ISSN : 2583-9411
(Online)

शुभोदय

अन्तरराष्ट्रीय साहित्यिक ई-पत्रिका

वसंत अंक - 2026

VOLUME : 05 | ISSUE : 01

सत्यम् शिवम सुन्दरम् शुभम्

प्रस्तुति

'शुभम्' साहित्य, कला एवं संस्कृति संस्थान (पंजी.), गुलावठी (बुलन्दशहर) उ.प्र. भारत

ई-साहित्यिक पत्रिका
ईमेल: shubhodayashubham@gmail.com

वसंत अंक - 2026

ISSN: 2583-9411(Online)
Volume:05 * Issue: 01

संरक्षक

प्रोफेसर महावीर सरन जैन
पूर्व निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान,भारत सरकार
मोबाइल—9456440756

डॉ. सुभाष वसिष्ठ
सुविख्यात शिक्षाविद् एवं साहित्यकार
मोबाइल-9971839177

प्रधान संपादक

डॉ. देवकीनन्दन शर्मा
मोबाइल - 9837573250

संपादक

डॉ. ईश्वर सिंह
मोबाइल - 9899137354

सह संपादक

मुकेश निर्विकार
डॉ. नीलम गर्ग
डॉ. ब्रजराज यादव
मधु वार्ष्णेय
डॉ. राजकुमार वर्मा (तकनीकी)

प्रस्तुति

'शुभम्'
साहित्य, कला एवं संस्कृति संस्थान (पंजीकृत)
गुलावठी (बुलन्दशहर), उत्तर प्रदेश, भारत

डिज़ाइन

त्रिगुण कुमार झा
मो. : 9810679648

'शुभोदय' में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार रचनाकारों के हैं, उनसे 'संपादक मंडल' की सहमति होना अनिवार्य नहीं है।

‘शुभोदय’ (वसंत 2026) अनुक्रमणिका

सरस्वती वंदना 5

प्रधान संपादक की कलम से 6

संपादक की कलम से 7

अशेष प्रणाम 8

प्रो. महावीर सरन जैन 9

डॉ. मोनू सिंह 12

मुकेश निर्विकार 15

साक्षात्कार 19

लेख एवं कहानी

बी. के. वर्मा ‘शैदी’ 26

‘विदेह’ अरविन्द कुमार 29

डॉ. चेतन आनंद 32

अवधेश सिंह ’बंधुवर’ 34

सुरेश चंद शर्मा 36

मधु वार्ष्णेय 38

डॉ. प्रभाकर जोशी 40

श्यामल बिहारी महतो 42

पूनम सुभाष 46

डॉ. पुष्पा गर्ग 49

कविता/गीत/ग़ज़ल

डॉ. केशव कल्पांत 51

विनय विक्रम सिंह 52

योगेंद्र कुमार 53

जयप्रकाश श्रीवास्तव 54

निर्देश निधि 55

संगीता वर्मा 56

ऋषभ शुक्ला 57

डॉ. ज्ञानेश दत्त हरित 58

वंदना कुँअर रायजादा 59

डॉ. पूनम माटिया 60

प्रवीण पारीक ’अंशु’ 61

प्रगीत कुँअर 62

नवीन माथुर पंचोली 63

असलम राशिद 64

डॉ. ब्रजलता वर्मा 65

पुस्तक समीक्षा / साहित्यिक हलचल

प्रोफेसर जी. गोपीनाथन 66

डॉ. रजनी गुप्ता 67

मधु वार्ष्णेय 69

विरासत 71

डॉ. देवकीनन्दन शर्मा 72

नियम 73

चिट्ठी आई है 74

शुभोदय -लोकार्पण झलकियां 75

वर दे...

वर दे, वीणावादिनि वर दे,
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे !

काट अंध-उर के बंधन-स्तर,
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर,
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर,
जगमग जग कर दे,
वर दे, वीणावादिनि वर दे,
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे !

नव गति, नव लय, ताल-छंद नव
नवल कंठ, नव जलद-मन्द्ररव,
नव नभ के नव विहग-वृंद को,
नव पर, नव स्वर दे,
वर दे, वीणावादिनि वर दे,
वर दे, वीणावादिनि वर दे,
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे !

- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

प्रधान संपादक की कलम से

भारतीय साहित्य विश्व आकर्षण का केंद्र

प्राचीन काल से ही भारत बहुसांस्कृतिक और बहुभाषी देश रहा है। विभिन्न समुदायों, संस्कृतियों, धार्मिक मान्यताओं, जातीय चेतनाओं के विविध संदर्भ इस तथ्य के साक्षी हैं। इस वैविध्य के रहते एक सूत्र ऐसा है जो सभी को एकता की डोर से बाँधकर रखता है, वह है-हमारी भारतीयता। इसी कारण हमारा आधुनिक भारत अनेकता में एकता की चमक से दैदीप्यमान है। यही चमक समकालीन भारतीय साहित्य के एकत्व की आभा को विश्व में विकीर्ण कर रही है। आज का भारतीय साहित्य कहीं अधिक समृद्ध है और विश्वव्यापी भी।

वर्तमान में केवल कहानियाँ, उपन्यास, कविताएँ, नाटक और आलोचना ही नहीं लिखी जा रही हैं; राजनीति, आर्थिक, वैज्ञानिक, धार्मिक साहित्य के साथ-साथ विज्ञान कथा, दलित साहित्य, नारीवादी साहित्य, उपसंस्कृतियों के विषय में प्रचुर मात्रा में लेखन हो रहा है। जातीय अस्मिता और जातीय बोध भिन्नता के कारण अलग-अलग भाषाभाषी क्षेत्रों का साहित्य अंततः भारतीय मानस का ही प्रतिबिंब है। टेलीविजन, इंटरनेट, एआई आदि माध्यमों ने साहित्य के प्रसार में अद्भुत युगांतर उपस्थित कर दिया है। डिजीटल पटलों के प्रयोग ने यद्यपि अनेक चुनौतियां भी उत्पन्न की हैं, तथापि यह युग सत्य है कि आज का भारतीय साहित्य अभिनव वैभव के साथ विश्व में आकर्षण के केंद्र पर अवस्थित है।

'शुभोदय' की मूल संकल्पना और चार वर्षीय लघु जीवन यात्रा भारतीय साहित्य के प्रसार में सहभागी बनने की प्रबल आकांक्षी रही है। देश-विदेश के सजग कलमकारों और जिज्ञासु पाठकों से प्राप्त प्रेम और प्रोत्साहन को पाकर यह आकांक्षा फूले-फले, इसी विश्वास के साथ 'शुभोदय' का नवांक, वसंत-2026 आपके हाथों में सौंपते हुए हम गौरवान्वित अनुभव कर रहे हैं।

सादर प्रणाम !

श्रीमत्कुंज विहारणे नमः

मकर संक्रान्ति

15 जनवरी, 2026

डॉ. देवकीनन्दन शर्मा
प्रधान संपादक

संपादक की कलम से

साहित्य ही सच्चा मार्गदर्शक है .....

वैश्विक उथल-पुथल के बीच शुभोदय का 2026 का वसंत अंक आप तक पहुँच रहा है। सोवियत रूस और यूक्रेन युद्ध के समाप्त होने के कोई आसार नजर नहीं आ रहे हैं, चीन और अमेरिका के बीच तनाव ज्यों का त्यों बना हुआ है, अमेरिका ने वेनेजुएला के राष्ट्रपति को कैद कर लिया है जिससे एक बार फिर रूस और अमेरिका तथा चीन और अमेरिका के संबंध प्रभावित हो रहे हैं। उधर अमेरिका और ईरान के बीच पुन: जंग के बादल घिर आए हैं, अमेरिका क्यूबा को धमका रहा है, ग्रीनलैंड पर आधिपत्य की योजना बना रहा है, नेपाल में घोर अशांति व्याप्त है और बांग्लादेश में राजनीतिक और धार्मिक अस्थिरता अपने चरम पर है। अपने देश की आंतरिक स्थिति पर नजर डालते हैं तो राजनीतिक हितों पर राष्ट्रीय हितों की अनदेखी साफ नजर आती है। सत्ता पक्ष और विपक्ष में राष्ट्रीय हित के मुद्दों पर भी ठोस सहमति का अभाव दिखाई देता है और प्रेम, सौहार्द तथा सहयोग, किताबी बातें बन कर रह गई हैं।

इस दम घोंटू परिवेश में आशा की किरण जिस झरोखे से आती दिखाई देती है, वह साहित्य का ही झरोखा है। यहीं हमको मानवीय मूल्य, सामाजिक सरोकार और निष्पक्ष व्यवहार के दर्शन होते हैं। तटस्थ भाव से देखें तो संदेश बिल्कुल स्पष्ट है, साहित्य ही मानवता और नैतिकता का सच्चा मार्गदर्शक है। 'शुभोदय' इन्हीं मूल्यों के साथ आपके हाथों में है। इस अंक में परंपरागत साहित्यिक विधाओं के साथ-साथ तीन स्मृति शेष साहित्यकारों को श्रद्धांजलि स्वरूप 'अशेष प्रणाम' को शामिल किया गया है, 'शुभोदय' के लोकार्पण की चित्रमय झलकियाँ, पाठकीय प्रतिक्रियाओं के रूप में 'चिट्ठी आई है' और सुविख्यात नवगीतकार, उपन्यासकार, ग़ज़लकार और दोहाकार डॉ. योगेंद्र दत्त शर्मा का साक्षात्कार इसके आकर्षण को बढ़ा रहे हैं।

सभी सुधी पाठकों और साहित्यकारों के सहयोग से 'शुभोदय' का तेजी से विस्तार हो रहा है। आप सभी के अभिमत इस पत्रिका को बेहतर बनाने के मुख्य आधार हैं। अपनी प्रतिक्रियाओं से हमारा मार्गदर्शन करते रहें।

सादर,

डॉ. ईश्वर सिंह
संपादक

अशेष प्रणाम

शुभोदय परिवार स्मृति शेष हुए प्रतिष्ठित साहित्यकारों के प्रति श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि देता है। पत्रिका के इस भाग में दिवंगत आत्माओं के प्रति श्रद्धांजलि देते हुए लेख भी शामिल किए गए हैं।

डॉ. कमल किशोर गोयनका
(11.10.1938—01.04.2025)

डॉ. अश्वघोष
(20.07.1941—26.10.2024)

डॉ. राम दरश मिश्र
(15.08.1924—1.11 . 2025)

प्रो. महावीर सरन जैन
बुलंदशहर-उत्तर प्रदेश, मो. 9456440756

श्रद्धांजलि

कमल किशोर गोयनका:

मेरा आत्मीय मित्र एवं साधना-पथ का अथक पथिक

शुभोदय साहित्यिक ई-पत्रिका के प्रधान संपादक डॉ. देवकीनंदन शर्मा ने हिन्दी साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ चिंतक-समीक्षक और प्रेमचन्द-साहित्य-विशेषज्ञ स्व. डॉ. कमल किशोर गोयनका जी को श्रद्धांजलि स्वरूप एक आलेख भेजने का आग्रह किया है। दिवंगत साहित्यकारों के प्रति 'शुभोदय' के इन सत्प्रयासों का अभिनन्दन एवं सत्कार होना ही चाहिए।

कमल से मेरा विगत साठ वर्षों से भी अधिक समय से निरंतर सम्पर्क रहा। कमल से मेरी मैत्री सन् 1954 में प्रारंभ होकर आजीवन बनी रही। कमल के श्रमसाध्य, परिश्रमी, उद्यमपूर्ण एवं प्रखर व्यक्तित्व तथा अटूट आत्मीय मैत्री की अमिट छाप मेरे हृदय पटल पर अंकित रही है। कमल के व्यक्तित्व का, गुणों का; प्रतिभा का, श्रम शक्ति का और सारस्वत साधना का मैं हमेशा कायल रहा हूँ। उनके बढ़ते साहित्यिक कद को कवि रहीम के शब्दों में, मैं इस प्रकार व्यक्त करना चाहूँगा –

रहिमन यों सुख होत है, बढत देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, अँखियन को सुख होत।।

मान्यता है कि मानव जीवन दुर्लभ है। ऐसे जीवन के हर क्षण को जो सार्थक करता है; चरितार्थ करता है, उसका जीवन दूसरों के लिए प्रेरक होता है। उसका जीवन भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणाप्रद तमोहारी दीप के समान होता है जिसके प्रकाश में वह पीढ़ी प्रकाश प्राप्त कर जीवन पथ पर आगे कदम बढ़ाती है। मैंने छात्र जीवन से अपने मित्र के ज्ञानालोकित जीवन को देखा है। रात दिन शिक्षा के सत्कर्म की संलिप्तता को निहारा है। निंदा अथवा स्तुति की परवाह किए बिना सत्र के आरम्भ से ही प्रत्येक विषय पर सम्बंधित अनेक ग्रंथों का पारायण करने के अनंतर उनमें निहित ज्ञान रूपी दही को मथकर सार रूपी नवनीत निकालकर नोट्स तैयार करते हुए विलोका है। बी. ए. में कॉलेज में कमल और मेरे बीच प्रथम आने की प्रतियोगिता रहती थी। कमल को रात के 2 बजे से पहले नींद नहीं आती थी। मेरा हाल यह था कि मैं दस बजे के बाद जग नहीं पाता था। उन दिनों कॉलेज में साल में दो बार घरेलू परीक्षाएँ भी होती थीं। इन परीक्षाओं में मुझे किसी विषय में कमल से अधिक अंक मिल जाते थे तो कमल उद्वेलित हो उठता था। मुझसे मेरी उत्तर पुस्तिका लेकर उसके उत्तर का अपनी उत्तर पुस्तिका के उत्तर से तुलनात्मक अध्ययन करता था। अनेक बार मैंने कमल को इतिहास और हिन्दी के अध्यापकों से तर्क करते हुए देखा। तर्क होता था कि महावीर ने इस प्रश्न का उत्तर केवल तीन पृष्ठों में दिया है जबकि मैंने पाँच – छह पृष्ठों में उत्तर दिया है। फिर आपने मुझे कम अंक क्यों दिए? ऐसे अनेक प्रसंग इस समय मेरे स्मृति पटल पर ताज़ा हो रहे हैं। इतनी जबर्दस्त प्रतियोगिता होने के बावजूद हमारे बीच किंचित मात्र भी वैमनस्य अथवा ईर्ष्या भाव नहीं पनपा।

एक अन्य तथ्य को भी रेखांकित करना चाहूँगा। कमल और मेरे बीच वैचारिक मतभेद भी रहे हैं, अनेक बार तीखी नोंक-झोंक भी हुई हैं। इतना होते हुए भी

मैत्री की आत्मीयता एवं प्रगाढ़ता का सम्बंध-सूत्र कभी शिथिल नहीं हुआ, उसके बंधन निरंतर अटूट, प्रबल और दृढ़तर ही होते गए। कमल का जीवन इतना गतिशील रहा है; उसके जोश, उत्साह और उमंग के आगे मैं स्वयं को थका पथिक महसूस करता रहा हूँ। कमल का व्यक्तित्व प्रखर से प्रखरतर तथा भास्वर से भास्वरतर होता गया है। कमल और मेरे बीच जो आत्मीय सम्बंध रहे हैं उनकी अभिव्यक्ति मैंने कमल को लिखे पत्र में की होगी। मगर मेरे पास उसका प्रमाण नहीं है। मुझे कमल ने दिनांक 14 मार्च, 1988 को जो पत्र लिखा वह डॉ. अनूप सिंह ने मुझे लिखे गए पत्रों में से जिन चयनित पत्रों का संग्रह करके उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित किया है, उसमें कमल का उक्त पत्र संकलित है। उसके अंश उद्धृत हैं जिसमें हमारे सम्बंधों की आत्मीयता एवं कॉलेज-जीवन में साथ-साथ व्यतीत किए गए अनुभव-खंडों की बेबाक अभिव्यक्ति है –

"प्रिय भाई महावीर

आज न जाने क्यों तुम्हारी बहुत याद आयी। रात भर अपने अतीत को देखता रहा। बुलन्दशहर का जीवन, घर, मौहल्ले, सड़क और स्कूल कॉलेज तक फैले असंख्य दृश्य। इन दृष्यों में अनेक बार अपना महावीर भी प्रकट हुआ। वही प्रफुल्लित स्मित पूर्ण आकृति, वही स्नेहसिक्त स्पर्श, वही आत्मीयतापूर्ण व्यवहार और न जाने क्या-क्या। मेरी स्मृति के बहुत बड़े भाग में महावीर तुम बैठे हो इसलिए मुझे तुम्हारी बहुत याद आयी। और कैसा जीवन चल रहा है। परिवार में भाभी तथा बच्चे सभी आनन्दपूर्वक होंगे। सभी को यथायोग्य कहना।

अब भारत कब आ रहे हो? क्या याद नहीं आती भारत की? अब तुम्हें आना ही चाहिए और अपने देश के वायुमंडल में सांस लेनी चाहिये"।

(डॉ. अनूप सिंह (सम्पादक) – महावीर सरन जैनः पत्रों के दर्पण में, पृष्ठ 56)

बी. ए. करने के बाद मैं एम. ए. तथा डी. फिल. (डॉक्टर ऑफ् फिलॉसोफी) करने के लिए बुलन्दशहर से इलाहाबाद चला गया। उस समय मैं साहित्य के क्षेत्र में ही अनुसंधान करना चाहता था। मगर घटना चक्र इस तरह से घूमा कि मुझे भाषाविज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान का विषय मिला और मेरी नियति में भाषावैज्ञानिक बनना तय हो गया। डॉक्टरेट करने के बाद मेरी नियुक्ति जबलपुर के विश्वविद्यालय में हो गई। कमल का कर्म क्षेत्र दिल्ली हो गया तथा कमल की नियुक्ति दिल्ली विश्वविद्यालय के ज़ाकिर हुसैन ईवनिंग कॉलेज में हो गई। विजयेन्द्र स्नातक ने कमल को पी.-एच. डी. के लिए "प्रेमचन्द के उपन्यासों का शिल्प-विधान" शीर्षक विषय दिया जिस पर कमल ने प्रामाणिक ढंग से कार्य सम्पन्न किया। इसका प्रकाशन सन् 1974 में हुआ। यह संयोग है कि इसकी समीक्षा करने का दायित्व श्री मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति, इंदौर की मासिक मुख पत्रिका "वीणा" के सम्पादक ने मुझे सौंपा। मैंने कमल के शोध-प्रबंध की समीक्षा की जो वीणा के वर्ष 48 के अंक 4 – 5 के पृष्ठ 75 से पृष्ठ 76 में प्रकाशित हुई (अप्रैल – मई, 1975)। इस समीक्षा का सार निम्नवत हैः

- - -दूसरे अध्याय में प्रेमचन्द के उपन्यासों का कालक्रमानुसार विवेचन किया गया है तथा प्रत्येक उपन्यास के रचनाकाल एवं प्रकाशन तिथि का निर्धारण किया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी के अनुसंधित्सुओं एवं हिन्दी के प्रतिष्ठित आलोचकों ने प्रेमचन्द के उपन्यासों के लेखन तथा प्रकाशन तिथि के सम्बंध में परस्पर विरोधी एवं अप्रमाणिक सूचनाएँ दी हैं। लेखक ने इस सम्बंध में वैज्ञानिक अनुसंधान पद्धति का अनुगमन किया है तथा तथ्यपरकता पर बल दिया है। लेखक ने प्रेमचन्द के दो अनुपलब्ध उपन्यासों के सम्बंध में भी संकेत किया है।

शिल्प विधान में लेखक ने कथा शिल्प एवं भाषा की विवेचना सर्वाधिक सूक्ष्मता एवं गम्भीरतापूर्वक की

है। उपन्यासों में समाख्यानक उपकरण, नाटकीय उपकरण एवं महाकाव्यात्मक उपकरणों की विवेचना से हिन्दी आलोचना में अध्ययन के नये क्षितिज उद्घाटित हुए हैं।

सामग्री का विश्लेषण करने के अनन्तर निष्कर्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत है; पूर्वाग्रहयुक्त वादों एवं सिद्धांतों की उपन्यासों में खोज नहीं की गई है।

जिस तटस्थ एवं व्यापक रीति से प्रेमचन्द के उपन्यासों के शिल्प विधान का निरीक्षण, विश्लेषण, विवेचन एवं आलोचन किया गया है वह लेखक की सूक्ष्म, मौलिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि का परिचायक है"।

इस अध्ययन के बाद कमल आगे बढ़ते ही गए। अविचलित भाव से अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अहर्निश जुटना कमल का स्वभाव हो गया। अपने जीवन से कमल ने कार्य दक्षता, कर्तव्यनिष्ठा एवं अनवरत संलग्नता की मिसाल कायम कर दी। साधना और सिद्धि दोनों धन्य हो गए। जब मैं रोमानिया में विज़िटिंग प्रोफेसर के पद पर कार्यरत था तब भी कमल से मुझे अपनी साधना के बढ़ते चरणों की जानकारी मिलती रही।

मैं कमल से कहता था कि तुम इतनी मेहनत क्यों करते हो। छपास भी रोग बन जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से देखो – जैसे पाँच किताबें, वैसे ही पचास किताबें। आदमी को उसकी दो-तीन पुस्तकों से जाना जाता है। जीवन के संध्या काल में रात दिन की अनवरत कठोर साधना से क्या मिलेगा। बार-बार के कचोटे जाने पर एक बार कमल ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया था -"ऐसा करने से मन इधर उधर भटकता नहीं है"।

कमल के इस उत्तर ने मुझे सोचने के लिए मज़बूर कर दिया। सन् 2011 में मेरे परिवार में घटित त्रासदी ने मुझे विचलित कर दिया था। पढ़ने-लिखने पर विराम लग गया था। कमल के इस उत्तर को सुनकर तथा कमल के द्वारा उस मनःस्थिति में अनेक बार प्रेरक वार्तालाप करने के कारण मेरे लड़खड़ाते कदमों को थामने का आधार एवं मुझे सशक्त संबल मिला। अपने वैराग्य तथा प्रमाद को झटककर मैंने जब चिंतन एवं मनन में डूबने का अभ्यास शुरु किया तब मुझे कमल के वचन की सत्यता और प्रामाणिकता की अनुभूति हुई। मैंने दिनकर की लिखी हुई कविता की निम्न पंक्तियों के भावार्थ को आत्मसात करने का संकल्प किया:

दीपक का निर्वाण बहुत कुछ
श्रेय नहीं जीवन का।
है सद् धर्म दीप्त रख उसको
हरना तिमिर भुवन का।

साहित्य साधना और ज्ञान की यह ज्योति जिसे मैं 'कमल' और दुनिया ' डॉ. कमल किशोर गोयनका' के रूप में जानती है, अपनी सांसारिक यात्रा को पूरी कर 1 अप्रैल 2025 को ब्रह्म ज्योति में विलीन हो गई। यह मेरे लिए व्यक्तिगत और समग्र रूप से हिंदी साहित्य की भारी क्षति है। मैं दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

-xxx-

डॉ. मोनू सिंह

हस्तिनापुर (मेरठ)-उत्तर प्रदेश

मो. 9058127618

श्रद्धांजलि

हिन्दी साहित्य के अजातशत्रु : रामदरश मिश्र

मुझे स्मरण नहीं आता कि आधुनिक काल में किसी साहित्यकार ने इतने शानदार ढंग से अपने जीवन के सौ वर्ष पूर्ण किए हों। यदि कोई कवि अपने जीवन के सौंवे वर्ष में भी काव्य पाठ कर रहा हो, अपनी जन्मशताब्दी समारोह में शारीरिक रूप से उपस्थित होकर 'जश्न' में शरीक हो, तो इसे अक्षय ऊर्जा और सकारात्मकता से परिपूर्ण जीवन का सर्वोत्तम उदाहरण मानना चाहिए। जब समूची दुनिया सदी की सबसे भयावह त्रासदी कोरोना जैसी महामारी से अपने जीवन रस को रीतते हुए देखने के लिए विवश थी, ऐसी विषम परिस्थितियों में भी 97 वर्ष की वय का कोई साहित्यकार अपने समय के नवोदित, अग्रज और समकालीन रचनाकारों के साथ रचनात्मक लम्हों का आनन्द ले रहा हो, वह जीवनशक्ति से कितना भरा-पूरा व्यक्तित्व होगा? रामदरश मिश्र हिन्दी के उन गिने-चुने साहित्यकारों में शुमार है, जिन्होंने हिन्दी साहित्य की बहुविध अनुशासनों में साधिकार लेखन किया। उन्होंने कविता, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आलोचना, संस्मरण, डायरी, आत्मकथा इत्यादि विधाओं में डेढ़ सौ से अधिक पुस्तकें लिखीं। रामदरश मिश्र और रचनात्मकता जैसे एक-दूसरे में विलय हो गई हों। इतना विपुल लेखन उसी रचनाकार के लिए सम्भव है, जो सभी दुनियावी छल, प्रपंचों, लोभ, लालच, ईर्ष्या, द्वेष, जोड़-तोड़ एवं तमाम प्रकार की आसक्तियों से विमुक्त हो, जिसके लिए सृजन कुछ प्राप्त करने का निमित्त नहीं, वरन् आनन्द का विषय बन जाए। रामदरश मिश्र का व्यक्तित्व और कृतित्व साहित्य की सम्पूर्ण अवधारणा है, एक सुनहरा अध्याय है, जिसे साहित्य की दुनिया में दीर्घकाल तक याद रखा जाएगा।

15 अगस्त, 1924 को उत्तर प्रदेश राज्य के गोरखपुर जनपद के 'डुमरी' नामक गाँव से शुरु उनकी यात्रा बनारस, गुजरात और दिल्ली में आकर 101 वर्ष की अवस्था पूर्ण होकर परम ज्योति में विलीन हो गई। रामदरश जी का व्यक्तित्व और कृतित्व सरलता, सादगी, परिश्रम, ईमानदारी का प्रतिरूप है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में कहीं कोई द्वैत नजर नहीं आता, उन्होंने सादगी के सौन्दर्य को जीवन-पर्यन्त जिया। उनके व्यक्तित्व से भी कितना कुछ सीखा जा सकता है। आज के इस घोर प्रतिस्पर्धी युग में जब बड़े-बड़े नामचीन रचनाकार अपने-अपने गुट बनाकर यशेषणा एवं वित्तेषणा में संलिप्त हों, समाज में मूल्यहीनता अपने चरम पर हो, महत्वाकांक्षा का ज्वर मनुष्यता को लील रहा हो, बड़बोलापन समाज का अभिन्न अंग बन गया हो,

ऐसे संक्रान्तिकाल में रामदरश मित्र का व्यक्तित्व और कृतित्व सुखद आस्वस्ति की भाँति नजर आता रहा। वे अपनी एक भेंटवार्ता में बड़ी सरलता और सहजता से कहते हैं- "मैं कोई चमत्कारिक प्रतिभा का व्यक्ति नहीं हूँ, सब कुछ धीरे-धीरे सीखता हूँ, धीरे-धीरे जो चीजें मेरे अनुभव के दायरे में आती हैं, उन्हें साहित्य में उकेरता हूँ।"

ऐसी विनम्रता और स्वीकारोक्ति तो संत पुरुषों में ही सम्भव है, निस्पृहता और सन्तोषवृत्ति उनके लिए बहुत मूल्यवान थी, जिसका दामन उन्होंने जीवनपर्यन्त नहीं छोड़ा।

रामदरश मिश्रा जी को हिन्दी आलोचना में एक लम्बे समय तक उपेक्षित करने की सुनियोजित साजिशें होती रहीं, इसका एक बड़ा कारण यह था कि उन्हें लेखकों की शिविरबंदी पसन्द नहीं थीं, वैचारिक स्तर पर उन्होंने किसी विचारधारा का अन्ध समर्थन नहीं किया, अपने तात्कालिक लाभ के लिए किसी की वैचारिक गुलामी स्वीकार नहीं की, जिसके कारण उन्हें साहित्य में उपेक्षा झेलनी पड़ी। उनका स्पष्ट मानना था कि मैं कृत्रिम रूप से किसी विचारधारा का खोल ओढ़कर कृत्रिम साहित्य का सृजन नहीं कर सकता। मैं स्वयं के अर्जित किए गए अनुभव को ही सहजता से अभिव्यक्त करने में विश्वास रखता हूँ।

संघर्षों की लम्बी यात्रा तय करके उन्होंने साहित्य के पाठकों के दिल में अपनी जगह बनाई थी। वे जल्दबाजी और उछल-कूद से दूर एक संयत साधक थे। उन्होंने 15 उपन्यास लिखे। जल टूटता हुआ, पानी के प्राचीर, बिना दरवाजे का मकान, दूसरा घर जैसे चर्चित उपन्यास लिखे, जिसके माध्यम से उन्होंने फणीश्वरनाथ रेणु की परंपरा को आगे बढ़ाया, जीवन की विविध सच्चाइयों को उजागर किया। उन्होंने बेरंग बैनाम चिट्ठियाँ, पक गई है धूप, कन्धे पर सूरज, दिन एक नदी बन गया, जुलूस कहाँ जा रहा है, आग कुछ नहीं बोलती, बारिश में भीगते बच्चे जैसे उत्कृष्ट काव्य संग्रह साहित्यिक जगत को दिए। उन्होंने अपनी लेखनी से आलोचना जगत को भी समृद्ध किया है। हिन्दी उपन्यास एक अंतर्यात्रा, हिंदी कहानी: अन्तरंग पहचान, हिन्दी कविता: आधुनिक आयाम, छायावाद का रचनालोक जैसी उत्कृष्ट आलोचनात्मक पुस्तकें लिखी, दो सौ से अधिक कहानियाँ लिखीं, निबन्ध, संस्मरण, डायरी इत्यादि विधाओं में लेखन किया।

इतने विपुल और उत्कृष्ट साहित्य सृजन के बाद भी नब्बे की आयु तक कोई पुरस्कार न मिलना, सचमुच आश्चर्य का विषय है, किन्तु उन्होंने कभी इस उपेक्षा के लिए कोई गिला शिकवा नहीं किया, न ही किसी के प्रति द्वैष भाव रखा, पुरस्कार प्राप्त करने के लिए उन्होंने कभी भी सत्ता प्रतिष्ठानों अथवा किसी व्यक्ति विशेष की चरण वन्दना नहीं की। राजनीतिक निर्लिप्तता और शुचिता का उन्होंने जीवन-पर्यन्त पालन किया। सामाजिक संलिप्तता ही उनकी सम्पूर्ण काव्य यात्रा का संबल रही। नियति ने उन्हें एक लम्बा और स्वस्थ जीवन दिया और अन्ततः उनके विरोध, उपेक्षा, अवमानना का सारा कोलाहल जब थिर हो गया और रामदरश मिश्र अचल, अडिग और निस्पृह भाव से साहित्य साधना में जुटे रहे, तब उन्हें वे सभी पुरस्कार मिले, जिसके वे बहुत पहले से हकदार थे। अट्ठानवें वर्ष की अवस्था में सरस्वती सम्मान, इससे पहले व्यास सम्मान, साहित्य

अकादमी पुरस्कार, श्लाका सम्मान और भारत-भारती, पदमश्री इत्यादि पुरस्कारों से सम्मानित हुए। उन्होंने अपने पाठकों के हृदय में बहुत ही जतन और साधना से घर बनाया था-

बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे
खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे।
किसी को गिराया न खुद को उछाला
कटा जिंदगी का सफर धीरे-धीरे।
जहाँ आप पहुँचे छलांगें लगाकर
वहाँ मैं भी आया मगर धीरे-धीरे।
पहाड़ों की कोई चुनौती नहीं थी
उठाता गया यूँ ही सर धीरे-धीरे।
न हंसकर न रोकर किसी में उडेला
पिया खुद ही अपना जहर धीरे-धीरे।
मिला क्या न मुझको ऐ दुनिया तुम्हारी
मोहब्बत मिली है मगर धीरे-धीरे।

ये पक्तियाँ उनके जीवन और लेखन दोनों को गहनता एवं सूक्ष्मता से बयां करती हैं। मानों ये पंक्तियाँ समूचे हिन्दी समाज को आईना दिखा रही हों। हिंदी का यह शिखर पुरुष शताब्दी का अनुभव संचित किए कभी किसी व्यर्थ के प्रपंच और विवाद में नहीं रहा, कभी कोई ऐसा कृत्य नहीं किया, जिससे साहित्य की गरिमा को ठेस पहुँचे। रामदरश मिश्र के व्यक्तित्व और साहित्य को पढ़कर देखकर हमेशा लगता है कि सरलता और सादगी का भी अपना एक चेहरा होता है। वे हमेशा जन के निकट रहे। उन्होंने दिल्ली जैसे महानगर में रहते हुए भी अपने गाँव, खेत-खलिहान, बंधु-बांधवों को जीवित रखा और अपनी संवेदना और जीवन ऊर्जा से हमेशा दीप्ति रखा।

उनके साहित्य संसार में गाँव की मिट्टी, प्रेम, प्रकृति, लोक की जीवटता, रिश्तों की उष्मा और बदलते सामाजिक परिवेश का ईमानदार चित्रण मिलता है। उनके रचना संसार में मनुष्यता और मानवीयता के गहरे सबक समाहित हैं। 'यह किसका घर है' नामक कविता का एक टुकड़ा देखिए-

यह किसका घर है, हिन्दू का
यह किसका घर है, मुसलमान का
यह किसका घर है, ईसाई का
शाम होने को आई
सवेरे से ही भटक रहा हूँ
मकानों के इस हसीन जंगल में
कहाँ गया वह घर
जिसमें एक आदमी रहता था
अब रात होने को है
मैं कहा जाऊँगा।

उनका कृतित्व हिन्दी साहित्य की मूल्यवान धरोहर है, जो आने वाली पीढ़ियों को प्रेरित करता रहेगा, उनका मार्ग प्रशस्त करता रहेगा। वे सचमुच हिंदी साहित्य के अजातशत्रु थे। हिन्दी साहित्य के विशाल वटवृक्ष, शताब्दी पुरुष को शत-शत नमन।

-xxx-

मुकेश निर्विकार
बुलंदशहर-उत्तर प्रदेश
मो. 9411806433

श्रद्धांजलि

दद्दा कहते थे... डॉ. अश्वघोष को याद करते हुए

26 अक्टूबर, 2024 को हिन्दी के मूर्धन्य कवि डॉ0 अश्वघोष अपनी अनन्त यात्रा पर चले गये। वह हिन्दी कविता के एक सशक्त हस्ताक्षर थे, जिनके नवगीत, गजल, अतुकान्त कविता यहाँ तक कि बाल कविता पर भी जनवाद की गहरी छाप थी। मूलतः जनपद बुलन्दशहर के निवासी थे, इसलिए उनसे एक विशेष लगाव था। उनकी भी मुझे भरपूर आत्मीयता मिलती थी। मैं उनको 'दद्दा' सम्बोधन से पुकारता था। हालांकि, उनके अभी जाने की मुझे रंचमात्र भी कहीं कोई आशंका नहीं थी। उनसे रोज़ ही तो घण्टों बतियाना रहता था, वह थे ही इतने जीवंत कि मृत्यु-छाया उनके जीवन के दायरे में कहीं से भी घुसती हुई दिखाई नहीं पड़ती थी।

लेकिन दद्दा अब चले गए हैं, यह एक कटु यथार्थ है। उनके जाने के महीनों बाद मुझे इसका वास्तविक बोध हो पाया है। उनके जाने के बाद से ही निरन्तर मैं उनकी स्मृतियों को जी रहा हूँ! स्मृति-शेष हो जाने का सच्चा मर्म अब समझ आया है मुझे!

दद्दा के साथ मेरा अनोखा रिश्ता था, अत्यंत आत्मीय रिश्ता, जो उनके जाने के बाद से और भी प्रगाढ़तर महसूस हो रहा है। दद्दा मेरे लिए कई-कई किरदारों में थे- मित्रवत्, पितृवत्, साहित्यिक मार्ग-दर्शक, एक ज़िंदादिल बुजुर्ग! दद्दा की स्मृतियाँ मेरे अंतःकरण में संचित हैं, जिनकी खदकन मुझे हर समय व्याकुल करती है। मेरे पास 26 अक्टूबर, 2024 तक के दद्दा तो महफ़ूज़ हैं, ज्यों-के-त्यों, मेरे हृदय में, किन्तु उसके बाद के दद्दा मुझे मिल नहीं पा रहे हैं। इसलिए मेरी व्याकुलता और भी बढ़ जाती है। मेरी विरह-वेदना अंततः दद्दा के ही गीत में सिरजती है:

गोचर होकर, रहे अगोचर
होकर भी तुम, नहीं कहीं हो
अभी यहीं थे, अभी नहीं हो
कहाँ खो गए, यादें बोकर...

मुझे लगता है कि हमारे आत्मीयजन हमारी निज़ी खिड़कियां हैं। हमारे अस्तित्व के विस्तार हैं। दद्दा अश्वघोष भी मेरे लिए मेरे जीवन-कक्ष से सम्बद्ध एक ऐसी ही परम आत्मीय निजी खिड़की थे, जिसे खोलकर मैं अपने तंग अस्तित्व के दायरे से बाहर झाँक कर अनुभवों का, अतीत का, दुनिया का विशाल प्रसार देख लेता था। अक्सर सुबह-सुबह दद्दा से मेरी घण्टे-दो-घण्टे फोन पर बातें होतीं। चूंकि हम दोनों के गाँव परस्पर नजदीक हैं, इसलिए हम एक ही क्षेत्रीय संस्कृति को जीते थे तथा एक ही बोली-बानी में बतियाते थे। दद्दा के पास साढे-आठ दशक से भी अधिक लंबे जीवन-काल के अनुभव थे, उनके पास जेवर-टप्पल-खुर्जा-बुलन्दशहर का अतीत था, साहित्यकारों के रोचक किस्से थे...बहुत कुछ था जिसे वह मेरे साथ खुलकर बॉटते थे। लेकिन अफसोस! अब दद्दा की आवाज सुनने को नहीं मिलेगी। अफसोस! मेरी संसार देखने की यह निजी खिड़की सदैव के लिए बंद हो गयी है। ज़िन्दादिल खिड़की, ज़िन्दगी की सरसता और फक्कडता की बयार अनुभूत कराने वाली खिड़की।

दि. 06.11.2024, स्थानः कमलेश्वर महादेव मंदिर, कांवली, देहरादून, समयः 03:00 बजे अपराह्न मैं दद्दा की शोक-सभा में बैठा हूँ, गुमशुम, उदास, शोक -मग्न! मेरे बगल में कवि-मित्र श्री परमेन्द्र सिंह जी भी बैठे हैं। हम दोनों ही दद्दा के युवा-शिष्य, जिन्हें वह 'युवा-मित्र' कहा करते थे। मंदिर के विशाल हॉल में दूर रखे फोटो-फ्रेम में पुष्प-मालाओं के बीच से दद्दा हमें निहार रहे हैं। मैं दद्दा के समूचे अस्तित्व को इस फोटो-फ्रेम में कैद पाता हूं। मुझे लगता है कि दद्दा की आत्मीय खिड़की के माध्यम से दुनिया निहारने का मेरा रास्ता दद्दा के फोटो से ढंक दिया गया है। मुझे पता है कि इस फोटो को हटाने पर भी मुझे वे वीथियां अब कभी नहीं दिखेंगी, जिन वीथियों में मैं दद्दा के साथ निर्द्वन्द्व विचरते हुए खुद को अलमस्त पाता था। कितना हृदयविदारक है किसी नितान्त अपने आत्मीयजन को फोटो-फ्रेम में अचानक से क़ैद देखना!

मेरे सामने यादों का एक लम्बा सिलसिला है...पहली बार करीब दो दशक पहले 'कादम्बिनी' या 'वागर्थ' में दद्दा के नाम के साथ उनके गांव-रन्हेरा जनपद बुलन्दशहर का उल्लेख देखकर मैंने उन्हें फोन किया था। पहले दिन से ही दद्दा ने जो अपनापन दिया, वह जीवन-पर्यन्त बना रहा...फिर तो हम घण्टों बतियाते....साहित्य, समाज, संस्कृति, शहर, देहात, कविता, गीत, ग़ज़ल, जेवर, टप्पल, खुर्जा और भी न जाने क्या-क्या, बातों का अंतहीन सिलसिला।

मुझे याद है, मेरे वर्षों के निरन्तर आग्रह पर दद्दा सितम्बर-2014 में बुलन्दशहर प्रवास पर आये थे। वह मेरे पास करीब 5-6 दिन ठहरे थे। यह हम दोनों की पहली मुलाकात थी। उससे पहले हम फोन पर वर्षों से बातें करते रहे थे तथा परस्पर आत्मीय बन चुके थे। वह अपनी बहुत ख़ातिरदारी देखकर मुझसे बोले, "अरे, मुन्ना, मैं तो यहाँ बुलन्दशहर तुझे जीने आया हूं! तुझसे बतियाने! मैं इंसान को जीता हूं!" दद्दा सच ही इंसान को जीते थे। हम दोनों परस्पर एक दूसरे को जीते थे। दो जीवन परस्पर इतने भी सम्बद्ध हो सकते हैं, यह उनके जाने के बाद ही अनुभूत हुआ है। उस दौरान दद्दा बुलन्दशहर के सभी साहित्यकारों से मिले थे तथा हिन्दी साहित्य परिषद बुलन्दशहर एवं एन0आर0ई0सी0कॉलेज खुर्जा में उनके काव्यपाठ के भव्य आयोजन हुए थे। ये ऐतिहासिक लम्हे थे, जिनमें हमने दद्दा को जीया था। उस दौरान दद्दा अपने पैतृक गॉव रन्हेरा भी गए। ये सभी स्मृतियां इस अंक में सचित्र सहेजी गयीं हैं।

दद्दा अक्सर साहित्य के दिग्गज़ों के किस्से सुनाया करते थे। उनके पास नागार्जुन से लेकर नामवर सिंह तक के बहुत सारे किस्से थे। उनकी बातों में जाने कितनी ही बार मैंने रामदरश मिश्र, जयपाल सिंह तरंग, से0रा0यात्री, धनंजय सिंह, विज्ञानव्रत, कृष्ण शलभ, परमेन्द्र सिंह से उनके आत्मीय रिश्ते जाने। परमेन्द्र सिंह और मुझे वह एक साथ जोड़ते थे। हमारी परस्पर मित्रता भी दद्दा अश्वघोष ने ही करायी थी। वह हमसे एक से दूसरे की तारीफ करते थे। दद्दा इस बात के लिए हमें झिड़कते थे कि हम दोनों आलसी हैं तथा अपनी रचनाएं छपने के लिए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में नहीं भेजते हैं। इसके लिए वह अक्सर हमें हिदायत भी दिया करते थे। बेहद याद आया करेंगी हमें दद्दा की वे मीठी झिड़कियां! नियति ने हमसे बरबस ही हमारे साहित्यिक संरक्षक छीन लिए हैं।

मुझे दद्दा का अपार स्नेह मिला। पुत्रवत् भी! मित्रवत् भी! शिष्यवत् भी! वह अक्सर मुझसे हमारे अंचल की बोली में बात किया करते, "अरे मुन्ना देख, तू तौ भोत आलसी ऐ यार, देख, मैंने अबई पत्र-पत्रिकाओं को अपनी रचनाएं भेजने के लिए 20 लिफाफे तैयार किये हैं। अब छपती रहेंगी सालभर तक पत्रिकाओं में!" जब दद्दा की रचनाएं पत्रिकाओं में प्रकाशित होतीं, तो वह फोन करके मुझसे यह खुशी शेयर करते, "मुकेश देख...तैनें आज को दैनिक जागरण पढ़ो...अरे 'पुनर्नवा' में मेरी रचना छपी है।" मैंने कादम्बिनी, वर्तमान

साहित्य, अहा ज़िंदगी, वागर्थ, समकालीन भारतीय साहित्य आदि न जाने कितनी ही पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाऐं पढ़ीं तथा अपनी डायरी मे अंकित कीं। अब ये संवाद मेरे लिए सुखद् यादें हैं। किसी अमूल्य धरोहर की तरह!

सृजन के प्रति वृद्धावस्था में भी दद्दा का उत्साह युवकोचित था। नए कविता संग्रह लाने और पत्रिकाओं में रचनाऐं भेजने के प्रति उनका उत्साह देखते ही बनता था। दद्दा के अधिकांश कविता-संग्रह उनके जीवन के अंतिम दो दशकों में प्रकाशित हुए। अभी भी उनके प्रेम गीतों का एक संग्रह प्रकाशन की प्रक्रिया में है तथा अनेक रचनाऐं अप्रकाशित हैं। मुझे उम्मीद है कि देश के प्रकाशकगण एवं साहित्य के सुधीजन दद्दा की इन अप्रकाशित रचनाओं के प्रकाशन के लिए सामने आयेंगे। यह दद्दा के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

दद्दा, निःसंदेह, देश के एक बड़े कवि थे, जिन्होंने अपने जीवन के लगभग सात दशक साहित्य सृजन को समर्पित किए। उन्होंने अपने जीवनकाल में विशद् साहित्य सृजन किया, जिनमें करीब 12 नवगीत संग्रह, 07 ग़ज़ल संग्रह, 05 कविता संग्रह, 07 बाल कविता संग्रह, 02 खण्ड काव्य, 01 कहानी संग्रह एवं हिन्दी कहानी पर शोधकार्य शामिल हैं। इसके अलावा प्रौढ़ शिक्षा, उत्तर साक्षरता एवं सतत शिक्षा के लिए भी उन्होंने लगभग 04 दर्जन पुस्तकें एवं प्राइमर्स लिखे। उनकी 'अम्मा का खत' कविता स्वामी रामतीर्थ मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, नांदेड में बी0ए0 प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम में शामिल है। उत्तराखण्ड की आठवीं कक्षा की पाठ्य-पुस्तक में उनकी 'आत्ममंथन' कहानी संकलित है। सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ0 नामवर सिंह उन्हें दुष्यन्त कुमार के बाद के हिन्दी के पाँच बड़े ग़ज़लकारों में मानते थे। दद्दा प्रचार-प्रसार एवं पुरस्कारों से सदैव विरक्त रहे। वह फेसबुक, यूट्यूब एवं सोशल मीड़िया से भी विरक्त थे। कदाचित् तभी दद्दा का सृजन-कर्म देश के आलोचकों की परिधि से अभी तक बाहर रहा है तथा उनके कृतित्व पर गंभीर शोधकर्म किये जाने की महती आवश्यकता है, ताकि दद्दा का लिखा हुआ विपुल साहित्य भविष्य के गर्त में विलुप्त न हो जाए। हालांकि, 'अम्मा का खत', 'अबके हमने आम न खाए', 'पूछा बरगद से' जैसे गीत दद्दा को सदैव अमर रखेंगे।

दद्दा कहा करते थे कि अच्छा लिखने के लिए औरों को पढ़ना बेहद ज़रूरी है। वह हमें भी पढ़ते रहने के लिए प्रेरित करते थे, "यार, तू विनोद कुमार शुक्ल को पढ़!......अरै...बद्रीनारायण का कविता-संग्रह 'सच सुने कई दिन हुए' ऐसा ग़ज़ब है कि इसकी हरेक कविता विशिष्ट है....मुकेश, तू 'मेरा दागिस्तान' पढ़ जा.....इसे हिम्मत करके पूरा पढ़ जइयो....इसे पढने के बाद तुझे बहुत कुछ मिलेगा...।" दद्दा कभी खुद की रचनाओं को पढ़ने का आग्रह नहीं करते थे। वह स्वयं देश के तमाम साहित्यकारों को पढ़ते थे तथा पुरानी पीढ़ी से लेकर बिल्कुल युवा पीढ़ी के रचनाकारों के सृजन से अपडेट रहते थे।

कोरोना-काल में दद्दा के पास नई पत्र-पत्रिकाओं की आमद बंद हो गयी थी। उन दिनों दद्दा का फोन आया, "अरै...मुन्ना, या लॉक डाउन में तौ कुछ बी लिखनो-पढ़नो ना है पा रह्यौ.....तू एक काम कर....तेरे पास तौ भौत किताबें हैं नई-नई! तू कविता की कुछ नई किताबें भेज मेरे लिए!" मैंने अपनी बुक-शेल्फ से कविता की सैंकड़ों किताबें अपने सामने रखीं तथा मोबाइल पर दद्दा को पुस्तकों व उनके रचनाकारों के नाम पढ़ सुनाए। दद्दा ने ज्यादातर संग्रहों को या तो पढ़ रखा था या उन्हें पसंद नहीं आए। अंततः उन्होंने कुल सात कविता- संग्रह डाक से भेजने के लिए कहा-'नगाड़े की तरह बजते शब्द' (निर्मला पुतुल), 'नये युग में शत्रु' (मंगलेश डबराल), भूमिकाएं खत्म नहीं होतीं'(हरीश चन्द्र पाण्डे), 'प्रेम गिलहरी दिल अखरोट' (बाबुषा कोहली) तथा 'कवि ने कहा' श्रृंखला की 03 पुस्तकें- ज्ञानेन्द्रपति, मदन कश्यप और कुमार अम्बुज। ये मेरी भी पसंद की पुस्तकें थीं।

उन दिनों दद्दा इन पुस्तकों को पढ़कर फोन पर मुझे अपनी प्रतिक्रिया दिया करते थे। कविता को लेकर उनकी अपनी समझ एवं धारणाऐं थीं, आख़िर दद्दा ने अपना सम्पूर्ण जीवन काव्य विधा को समर्पित किया था। गीत, ग़ज़ल और अतुकान्त कविता-तीनों में ही उनकी एक समान गति थी। इस संबंध में मुझे एक प्रसंग याद आता है, जिसे आप लोगों के साथ शेयर करना चाहूंगा। दद्दा को कविता-संग्रह भेजते समय मैंने उनसे बाबुषा कोहली के कविता संग्रह 'प्रेम गिलहरी दिल अखरोट' की प्रशंसा की थी। मुझे लगा दद्दा अश्वघोष को यह कविता-संग्रह पसंद आयेगा। किन्तु हुआ मेरी उम्मीद के सर्वथा विपरीत! दद्दा को यह संग्रह पसंद नहीं आया और उन्होंने मुझे फोन पर इस बात से अवगत भी कराया। इस कविता संग्रह के समर्थन में मैंने दद्दा से कहा कि दद्दा आजकल कविता का यही ट्रेंड है यानि कविता विषयबद्ध न होकर वन-लाइनरों, सूक्तियों, असम्बद्ध अटपटी कहनों का समुच्चय है, ये कविताएं भले ही असंगत और असम्बद्ध सूक्तियों से भरी हों, लेकिन इन कविताओं को पढ़ते-पढ़ते कई-कई पंक्तियों पर देर तक मंथन करने को बाध्य होना होता है। अटपटी कहन आधुनिक कविता का मुख्य गुण है। लेकिन दद्दा मेरी बात से संतुष्ट नहीं हुए तथा पुस्तकें वापस भेजते समय उन्होंने बाबुषा कोहली के कविता-संग्रह पर अपनी प्रतिक्रिया लिख कर अपने हस्ताक्षरों सहित मुझे भेजी। जो निम्नवत् हैः-

1- तुम उसके पटपटे शब्दों और सूत्रों से प्रभावित हो, जबकि वह खुद भी नहीं जानती इनके अर्थ और अपनी कविताओं का मंतव्य। शायद पुरस्कार देने वाले निर्णायक भी कुछ-कुछ इसी मर्ज से ग्रस्त रहे। और शिकार भी हुए।

2- यह किसी जादूगर की कुछ ऐसी चालाकी और जादूगरी है जिसे खुद जादूगर भी नहीं जानता कि वह कैसे, और क्यों कर रहा है यह जादू।

3- यह पाठकों के साथ धोखा है।

4- इन कविताओं में किसी एक विचार का विश्लेषण न होकर-बेबात, निरूद्देश्य विचारों का घटाटोप खड़ा करना है।

5- सारी कविताओं में समाहार की कमी है, कार्य और कारण का संबंध ही नहीं है।

6- कुल मिला कर बाबुषा कोहली का यह काव्य संकलन धोखों का एक पुलंदा है।

-अश्वघोष

एक दिन अचानक से मुझे डाक से दद्दा का एक ग़ज़ल संग्रह प्राप्त हुआ। इस संग्रह का नाम था-'बैठा हूँतन्हाई में'। इसके आवरण पर दद्दा के घनिष्ठ मित्र सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार व चित्रकार विज्ञान व्रत जी की चित्रकारी थी। यह संग्रह मेधा बुक्स, नवीन शहादरा दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। मैं दद्दा के इस ग़ज़ल संग्रह को आवरण पृष्ठ से आगे उलटता हूँऔर अगला पन्ना देखकर चकित रह जाता हूँ। दद्दा ने अपना यह ग़ज़ल-संग्रह मुझे समर्पित किया था। दद्दा के समर्पण के शब्द मुझे हृदय की गहराईयों तक अभिभूत करते हैं-

प्रिय भाई
मुकेश निर्विकार
और उसकी आत्मीयता के लिए

-अश्वघोष

मुझे लगता है कि दद्दा ने अपना और मेरा दोनों का भविष्य देख लिया था। यानि कुछ ही अन्तराल बाद इस दुनिया से खुद का जाना और मेरा यहाँ अकेले रह जाना। आज सच ही इस पुस्तक का शीर्षक मेरी मनोदशा बन गया है-'बैठा हूँतन्हाई में'। मुझसे दद्दा अश्वघोष को कभी भुलाया नहीं जा सकेगा। मेरे अंतस् में वह सदैव जीवित रहेंगे, अपनी अनगिनत स्मृतियों के बूते! दिवंगत् आत्मा को मेरा शत्-शत् नमन!

-xxx-

"अपने भीतर के साहित्य और संस्कृति के तत्वों को और विकसित करें"- डॉ. योगेंद्र दत्त शर्मा

साक्षात्कारकर्ता -- डॉ. ईश्वर सिंह, संपादक-शुभोदय

(प्रतिष्ठित नवगीतकार, उपन्यासकार, ग़ज़लकार और दोहाकार, डॉ. योगेंद्र दत्त शर्मा, गाजियबाद-उ.प्र. के साथ 'शुभोदय' का साक्षात्कार)

ई. सिं. : डॉ. साहब, आपकी रचनात्मक यात्रा की शुरुआत कैसे हुई?

यो.द.श. : मेरे घर का वातावरण साहित्यिक था। मेरे पिताजी कवि थे। मुझे याद है, सन 1962 में भारत-चीन युद्ध के दौरान मेरे पिताजी राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित थे और उसी तरह की कविताएँ आदि भी लिख रहे थे। उन्हीं से प्रेरित होकर मैंने भी एक कविता लिखी थी और एक लघु नाटिका भी। कालेज पत्रिका के संपादक हमारे हिन्दी के अध्यापक थे। कविता तो उनसे कहीं खो गई, लेकिन नाटिका छप गई। तब मैं नौवीं कक्षा में पढ़ता था।

जाहिर है कि यह प्रयास बचकाना ही था।.... बाद में जब मैं बीएससी के बाद एमएससी में आ गया और वहाँ गणित के साथ अपने पिताजी की इच्छा का पालन करते हुए एस्ट्रोनॉमी का भी अध्ययन किया, पर उसमें मेरा मन नहीं लगा। यह 1969-70 की बात है। तभी मुझे कविता का शौक लगा और मैं कविताएं लिखने लगा। लेकिन मेरे पिताजी इस पक्ष में नहीं थे कि मैं कविता लिखूँ। इसलिए पिताजी मेरी कविताएं नहीं सुनते थे।.....

लेकिन एक और बात यह थी कि उन्हीं दिनों पिताजी रिटायर हुए और उन्होंने बहुत कविताएं लिखीं। 20-25 साल से कुछ लिखा नहीं था तो रिटायर होकर उन्होंने बहुत ज्यादा लिखा। उनको मैं फेयर करता था, वह मैं करता रहा और कविता का अंकुर मेरे अंदर फिर से फूटने लगा। बाद में मेरे पिताजी कविता में आये शब्दों और पंक्तियों के विकल्पों के बारे में सलाह-मशविरा भी करने लगे। धीरे-धीरे यह भी समझ विकसित होती चली गई और मैं फिर धीरे-धीरे कविता लिखने लगा और कवि बन गया। फिर मेरी सर्विस भी लग गई, लेकिन साथ ही कविताएं भी लिखता रहा।

ई.सिं. : आपकी मुख्य पहचान एक नवगीतकार के रूप में है। इस विधा में आप कैसे आये? और इस दिशा में आपकी अब तक की यात्रा कैसी रही?

यो.द.श. : कवि तो मैं बन ही गया था। फिर मेरी नौकरी लग गई। फिर मैंने एम. ए. हिंदी में दाखिला ले लिया। वहाँ डा. कुँअर बेचैन भी पढ़ाते थे। उनसे मित्रता पहले से थी। एक दिन कुँअर बेचैन जी के घर पर ही देवेंद्र शर्मा 'इंद्र' जी आए थे। वहाँ उन्होंने अपनी कविताएँ सुनाईं। मैं उनसे बहुत

ज्यादा प्रभावित हुआ। इधर एम.ए. हिंदी में डॉ. हरीश शर्मा जी भी पढ़ाते थे, जो मेरे पिताजी के मित्र भी थे, उन्होंने हमें निराला जी की 'राम की शक्ति पूजा' पढ़ाई, और जिस ढंग से पढ़ाई उसने मेरे लिखने के शौक को और बल दिया। स्मृतिशेष 'इंद्र' जी से मुझे नवगीतों के बारे में बहुत कुछ जानने-समझने को मिला। मैं नवगीत लिखने लगा। मैं स्वयं को मूलतः नवगीतकार ही मानता हूँ और मैंने सबसे ज्यादा नवगीत ही लिखे भी हैं।

ई.सिं. : नवगीतकार के तौर पर आपकी रचनाशीलता का विकास कैसे हुआ, इस बारे में भी कुछ बताइये। साथ ही आदरणीय इंद्र जी से अपने जुड़ाव पर भी कुछ प्रकाश डालिये।

यो.द.श.: आदरणीय इंद्र जी से मेरा जुड़ाव बहुत आत्मीय स्तर का रहा। उनसे जुड़ने के बाद मैंने अपने आप को नवगीत के प्रति समर्पित कर दिया। एक दौर में मैंने बहुत नवगीत लिखे। मैं अपने सारे नवगीत इंद्र जी को सुनाता था और ये उनको बहुत पसंद भी आते थे। अब वे नहीं रहे, तो मुझे बड़ी तकलीफ इस बात की है कि मैं उन्हें अपने गीत कैसे सुनाऊँ! 'इंद्र' जी ने नवगीतों में बहुत-से छंद-प्रयोग किये हैं। उनके साथ रहकर मैंने भी बहुत सारे छंद-प्रयोग किये। यह उन्हें बहुत अच्छा लगता था। लेकिन मैंने उन छंद-प्रयोगों को कुछ और आगे बढ़ाया। मेरी मुलाकात के शुरुआती दिनों में निराला जी पर एक खंडकाव्य लिखा था और वह तुलसीदास वाले छंद में था। तुलसीदास वाला छंद एक खास किस्म का छंद है, जो निराला जी ने लिखा है। तब चर्चा यह होती थी कि इस छंद को साधना बड़ी टेढ़ी खीर है। लेकिन मैंने न केवल वह छंद लिखा, बल्कि उसमें भी एक और प्रयोग कर दिया। अब यह देखकर तो 'इंद्र' जी चकित रह गये! वह बड़े प्रभावित हुए। वह बड़े खुश भी हुए कि मैं इस तरह का भी काम कर सकता हूं।....

उन दिनों देश में इमरजेंसी थी। तब मैंने 'गवाक्ष' नाम से प्रबंध काव्य लिखा था, उसमें नवगीतात्मकता थी। अभी मैंने जिस छंद-प्रयोग का जिक्र किया, वह इसी खंडकाव्य का ही एक अध्याय है। 'गवाक्ष' में छह-सात अध्याय हैं और सभी में अलग-अलग छंद हैं।....

जहां तक मैं समझता हूं, नवगीतात्मकता को आधार बनाकर किसी प्रबंधकाव्य की रचना या तो कीर्तिशेष 'इंद्र' जी ने की है या मैंने। किसी अन्य ने भी की हो, तो मुझे इसकी ज्यादा जानकारी नहीं है। लेकिन

प्रबंधकाव्य के अलावा 'इंद्र' जी ने बहुत -सी लंबी गीति-रचनाएं भी लिखी हैं। जैसे उनकी एक बड़ी प्रसिद्ध रचना है और मुझे बहुत प्रिय भी है, वह है --'नाव-सा औंधा पड़ा है पुल/ कभी शायद यहां कोई नदी बहती थी!' यह नवगीत सामान्य आकार से थोड़ा बड़ा है। इसके अलावा कुछ और भी रचनाएं हैं। मैंने भी इस तरह की अनेक लंबी गीति-रचनाएं लिखी हैं। लेकिन मैंने तो उनके अलग से ही संकलन बनाये। मेरे दो संकलन हैं -- 'दिवस की फुनगियों पर थरथराहट' और 'यह सन्नाटा बोल रहा है'।

ई.सिं. : आप नवगीत, ग़ज़ल, दोहा और उपन्यास— इन सब विधाओं में समान रूप से प्रवीण हैं। इतने विविध रूपों में लेखन करते हुए आप अपने भीतर संतुलन और नवीनता कैसे बनाए रखते हैं?

यो.द.श.: मैं विनम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँकि मैंने कई विधाओं में लिखा है। हाँ, अलग-अलग विधाओं में लेखन करते समय संतुलन बनाने के लिए मैंने अलग से कोई प्रयत्न नहीं किया। मैं जिस समय जिस विधा में लिख रहा होता हूँ, उस समय मैं पूरी तरह उसी विधा में डूब जाता हूँ। मैं कविता लिखते समय पूरी तरह कवि बन जाता हूँ और ग़ज़ल लिखते समय ग़जलकार, दोहा लिखते समय दोहाकार और उपन्यास लिखते समय उपन्यासकार। अपने लेखन के साथ न्याय करने के लिए मैं उस समय अपनी साहित्यिक विविधता को भूल जाता हूँ। नवीनता के लिए, सभी साहित्यकारों की तरह मैं अपने समय और परिवेश से विषय और घटनाओं को उठाता हूँ और उन पर साहित्य के माध्यम से अपना मत प्रकट करता हूँ।

ई.सिं. : आपके लेखन में परंपरा और आधुनिकता दोनों के स्वर दिखाई देते हैं। आज के दौर में आप इन दोनों के बीच किस प्रकार का संवाद स्थापित करते हैं?

यो.द.श.: हम एक आधुनिक दौर में जी रहे हैं। ऐसे में एक सजग रचनाकार तो आधुनिक बातें ही करेगा न! और उसके संस्कारों में जो परंपरा है, वह भी किसी न किसी रूप में व्यक्त होगी ही। स्वस्थ परंपरा और आधुनिकता का बोध तो वैसे भी नवगीत की विशेषताएँ हैं।

मेरी जो मानसिक बुनावट है, उसमें परंपरा का विशेष महत्व है। स्वस्थ परंपरा जिसकी चर्चा हजारी प्रसाद द्विवेदी भी अपने निबंधों में करते हैं, जिसमें रूढ़ियाँ शामिल नहीं है। इन स्वस्थ परंपराओं में एक प्रवाहमान धारा है, उसे मैं अपनी सोच और सृजन में स्थान देता हूँ। आधुनिकता स्वाभाविक रूप से मेरे साहित्य में अभिव्यक्ति पाती है क्योंकि अपनी रचनाओं में मैं अपने समय को व्यक्त करता हूँ, तो उसमें तो आधुनिक संदर्भ लाने ही होंगे। इन दोनों के बीच संतुलन इस तरह से स्थापित हो जाता है कि एक तो मेरी मानसिक बुनावट का प्रतिनिधित्व करती है और एक मेरी रचना प्रक्रिया का।

ई.सिं. जब आप कोई रचना आरंभ करते हैं, तो वह पहले भाव के रूप में जन्म लेती है या

विचार के रूप में?

यो.द.श.: दोनों ही बातें हैं। कई बार एक भाव उमड़ता है और कई बार एक विचार उठता है जो मेरी रचना में मूर्त रूप लेता है। दोनों ही स्थितियाँ हैं। भाव को या विचार को आप अपनी रचना में किस प्रकार उतारते है, यह आप पर निर्भर करता है। मैं अपने भाव या विचार को उसकी संपूर्णता में रचना में उतारने का प्रयास करता हूँ। कई बार तो यह बहुत आसानी से हो जाता है और कई बार थोड़ा-सा समय लेता है।

ई.सिं. : आपकी दृष्टि में एक सफल रचना के लिए सबसे प्रमुख तत्व क्या है—भाव, भाषा या संरचना?

यो.द.श. : देखिए, यह ऐसी जटिल प्रक्रिया है कि इसमें किसी भी चीज को आप अलग नहीं रख सकते। कई बार इस तरह का भाव होता है कि आप साधारण और काम चलाऊ भाषा में भी अपनी बात कह सकते हैं और कई बार आप यदि अपने विचार को व्यक्त करते हुए परंपरा या संस्कृति के अनुरूप उस परिवेश में प्रवेश कर गए तो आपकी शब्दावली उसके ही अनुरूप ही हो जाएगी और उसी के अनुरूप उसकी संरचना भी हो जाएगी। अत: इन तीनों तत्वों को किसी रचना में से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। चूँकि मुझे भाषा का एक विशेष संस्कार प्राप्त है, अत: उसका स्तर बना रहे, इसका प्रयास मैं अपनी रचनाओं में अवश्य करता हूँ।

ई.सिं. : आप एक संपादक के रूप में अनेक रचनाएँ पढ़ते और परखते रहे हैं। क्या इस अनुभव ने आपके अपने लेखन को किसी विशेष दिशा में प्रभावित किया है?

यो.द.श. : एक संपादक का काम एक लेखक से तो भिन्न ही होता है। संपादन करते समय कई बार यह भी संभव है कि आप अपनी ही रचना में काट-छाँट कर दें। वह एक बिल्कुल अलग भूमिका है। एक संपादक के रूप में विभिन्न रचनाकारों की अलग-अलग किस्म की रचनाएँ हमारी नजरों से गुजरती हैं, तो हम लेखक के रूप में जब कुछ सृजन करते हैं तो अपनी रचनाओं को उन कमियों से बचा लेते हैं, कुछ शब्दों के अतिरिक्त प्रयोग का संपादन साथ–साथ कर लेते हैं। यह अनुभव तो आपके पास होता ही है कि आप कम से कम शब्दों का इस्तेमाल करें और कुछ अनर्गल बातों से बचा जाए। संपादक के रूप में कार्य करते हुए जो यह अनुभव मिलता है इससे जरूर सहायता मिलती है लेकिन इससे लेखन को कोई विशेष दिशा मिलती हो, ऐसा नहीं है।

ई.सिं. : वर्तमान सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश में आप साहित्य की भूमिका को किस रूप में देखते हैं? क्या आज का साहित्य समाज को दिशा देने में सक्षम है?

यो.द.श. : देखिए, आज इसको आप सौभाग्य कहिए या दुर्भाग्य कहिए कि हमारे साहित्यिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में जो दृश्य या सांस्कृतिक संदर्भ सामने आ रहे हैं, वे दो अलग-अलग दिशाओं में बंटे हुए दिखाई देते हैं। एक धड़ा

वह है जो यथास्थिति का पक्षधर है और दूसरा वह है जो यथास्थिति से असंतुष्ट हैं और उसके उसके प्रति एक विद्रोह का भाव रखता है। इन्हीं भावों को वह अपनी रचनाओं में प्रकट करते हैं। मैं यह मानता हूँ कि अतिरेक से तो बचा जाना चाहिए लेकिन एक रचनाकार की जो सही भूमिका है वह सामान्यत: शासन के समर्थन की नहीं हो सकती। उसका प्रतिपक्ष का ही पक्ष होता है क्योंकि अगर वह भी सिंहासन का समर्थन करने लगा तो सही चीज तो फिर सामने नहीं आएगी और जब तक यथास्थिति की आलोचना नहीं की जाएगी, तब तक स्वस्थ सामाजिक स्थिति भी पैदा नहीं हो सकती। अत: किसी भी रचनाकार की बड़ी जिम्मेदारी यह है कि वह प्रतिपक्ष की अपनी भूमिका को समझे और उस पर टिका रहे।

ई.सिं.: आज के युवा कवियों और लेखकों में आपको कौन-सी संभावनाएँ और कौन-सी कमियाँ दिखाई देती हैं?

यो.द.श. : युवा रचनाकार के पास नए-नए अनुभव और अनुभूतियाँ हैं, जिससे उनके पास जो मौलिकता है, वह सामने आती है, जो समाज को नई दिशा देती है। यह तो उनकी विशेषता और संभावनाएं हुईं। बहुत से नए रचनाकार अच्छा लिख रहे हैं, जो उत्साहित करने वाली बात है। लेकिन बहुत सारे ऐसे लोग हैं जो उसमें मेहनत करने से बचना चाहते हैं। ऐसा लगता है कि उनको छूट चाहिए। कथ्य के साथ-साथ वे शिल्प में भी छूट लेना चाहते हैं। अगर आप गीत लिख रहे हैं तो आपको मात्राओं और छंद का तो ध्यान रखना ही चाहिए। लेकिन आप उसमें भी छूट चाहते हैं, तो आप गीत न लिखें, आपने गीत चुना है तो इसकी न्यूनतम अपेक्षा को पूरा करना ही चाहिए। तथापि, वैचारिक स्तर पर जो नई चेतना सामने आ रही है, मैं उसका स्वागत करता हूं।

ई.सिं. : डिजिटल युग में ऑनलाइन मंचों और

सोशल मीडिया ने लेखन की पहुँच बढ़ाई है। क्या आपको लगता है कि इन माध्यमों ने लेखक और पाठक के संबंध को बदला है?

यो.द.श. : देखिए यह सब जो सोशल मीडिया, जिसमें फेसबुक, व्हाट्सएप्प और इंस्टाग्राम आदि आते हैं जिनके द्वारा कोई भी रचनाकार

अपनी रचना को जनता तक आसानी से पहुँचा सकता है, इन्होंने रचनाकार को ऐसा मंच तो सुलभ कराया है जो पहले उसे नहीं मिल पाता था। इस लिहाज से लेखक और पाठक या कहें श्रोता के संबंध गहरे हुए हैं और इसमें अच्छी संभावनाएं भी नजर आ रही हैं, लेकिन मुझे लगता है कि साहित्य और संस्कृति के लिए कोई न कोई एक स्थायी मंच जरूर होना चाहिए। मेरी राय में प्रिंट मीडिया उसके लिए ज्यादा कारगर सिद्ध हो सकता है।

ई.सिं. : एआई यानी कृत्रिम बौद्धिकता के इस युग में कृत्रिम बौद्धिकता साहित्य सृजन को किस प्रकार प्रभावित कर रही है और आप साहित्य के क्षेत्र में विशेष रूप से सृजन के क्षेत्र में उसकी क्या भूमिका देखते हैं?

यो.द.श. : जिसके नाम में ही कृत्रिम जुड़ा हुआ है तो उसमें मौलिकता तो होगी ही नहीं। कृत्रिम बौद्धिकता साहित्य, कला और संस्कृति को निरूपित तो कर ही देगी। मैं ऐसा मानता हूँ कि कम से कम साहित्य-सृजन के क्षेत्र को इससे बचाया जाना चाहिए।

ई.सिं. : आपकी किसी रचना या ग़ज़ल के पीछे की सबसे आत्मीय प्रेरणा या निजी अनुभव क्या रहा है?

यो.द.श.: मैं नहीं जानता कि कोई व्यक्ति कब, कैसे लिख देता है। हो सकता है आपके चिंतन के प्रतिफल में या कोई घटना जो कई बार आपके अवचेतन में बैठ जाती है वह लिखाती है। मेरी ग़ज़ल है 'मैं जिस बुनियाद पर दिन-रात नौ-महला बनाता हूँ, वह कितनी खोखली है, मैं ये अक्सर भूल जाता हूँ, नदी लाचार है वहशी किनारो की बगावत से, मुझी पर टूट जाता है, मैं जो भी पुल बनाता हूँ' आज जब मैं स्वयं को इन पंक्तियों का भुक्तभोगी पाता हूँ, तो मुझे ये शेर अक्सर याद आते हैं। एक घटना सुनाता हूं। मैंने एक कविता लिखी थी जिसका शीर्षक है 'मणिहारा तक्षक' उसमें एक नाग है जिसकी मणि खो गई है। उसके लिए वह किस तरह से बेचैन है, किस तरह से अपने फन को पटक रहा है, वह पीड़ा दिखाई गई है। मैं समझ नहीं पा रहा था कि यह विचार मेरी कविता में कैसे आया, तो मुझे अचानक याद आया कि मेरे पिताजी की आँखों का ऑपरेशन हुआ था। उससे पहले उन्होंने एक कविता लिखी थी 'अंधा अवधूत'। ऑपरेशन को कई महीने गुजर गए। अचानक उनको उस रचना की याद आई और उस समय मैं ऑफिस चला गया था। वे उस रचना को ढूँढने लगे, सारा दिन गुजर गया, कविता का कागज नहीं मिला। आप यह सोच सकते हैं कि वह गर्मी के दिन थे लेकिन उन्होंने पूरे दिन पानी तक नहीं पिया, चाय और खाने का तो सवाल ही नहीं... बस उन्हें वह कविता ही चाहिए थी। शाम को ऑफिस से आने के बाद मैंने उनसे विनती की कि वे चाय पानी पी लें। कविता को मैं ढूँढता हूं। लेकिन मेरी विनती का उन पर कोई असर नहीं हुआ। मैंने भी सभी कागजों में उस कविता को ढूँढना शुरू किया

और अंत में वह कविता मुझे मिल गई। जब मैंने वह कविता पिताजी के हाथों में दी तो उन्होंने उस कागज को अपनी आँखों से छुआया और तब उनके मुँह से निकला -- 'पानी...!' पिताजी की वह तपड़ मेरी कविता 'मणिहारा तक्षक' लिखते समय मेरे अवचेतन मन में थी। इस तरह से कुछ प्रसंग ऐसे होते हैं जो आपकी रचनाओं में जाने-अनजाने आ जाते हैं।

ई.सिं. : यदि आपको अपनी अब तक की साहित्यिक यात्रा को एक शीर्षक देना हो, तो वह क्या होगा—और क्यों?

यो.द.श. : मेरी साहित्यिक यात्रा को स्मृति शेष देवेंद्र शर्मा 'इंद्र' द्वारा एक नाम दिया जा चुका है, जो उन्होंने मेरी षष्टि पूर्ति के अवसर पर किताब संपादित की थी उसका शीर्षक दिया था। उन्होंने लिखा था 'वह अभी सफ़र में है' तो मैं भी यही कहना चाहूँगा, 'मैं अभी सफ़र में हूँ'।

ई.सिं. : आने वाले वर्षों में आप अपने लेखन को किस दिशा में बढ़ते हुए देखना चाहते हैं? क्या कोई विशेष विषय या परियोजना है जिस पर आप कार्यरत हैं?

यो.द.श. : मैं बहुत दिनों से यह सोच रहा हूँकि मैंने गद्य में बहुत कम काम किया है। हालाँकि कहने वाले कहते हैं कि आपने बहुत गद्य लिखा है, लेकिन फिर भी मुझे लगता है, मैंने कविताएँ तो बहुत लिखी हैं लेकिन गद्य जितना मुझको लिखना चाहिए था, मैं नहीं लिख पाया। दशक से भी ज्यादा समय से मैं कोई कहानी नहीं लिख पाया हूँ। कहानी लिखता हूँ, बीच में अधूरी छूट जाती है। मेरे दिमाग में एक उपन्यास है जिसका मैंने कुछ हिस्सा लिखा भी है। 'मेरा शहर और मैं' मेरी उम्र के साथ-साथ मेरा शहर भी विकसित हुआ है। शहर का भी अपना एक जीवन है। वह भी पैदा होता है, युवा होता है, प्रौढ़ होता है और अनेक बदलावों का साक्षी बनता है। शहर मेरा सहयात्री है या मैं शहर का सहयात्री रहा हूँ। इसको लेकर और पाँच साल पहले जो एक भयंकर त्रासदी हुई थी, आदमी की आदमी से दूरी बढ़ी थी और फिर वापस नहीं लौटी, बढ़ती ही चली गई, उस सबको लेकर एक उपन्यास मेरे दिमाग में है।

ई.सिं. : 'शुभोदय' के पाठकों के लिए आप क्या संदेश देना चाहेंगे?

यो.द.श. : मैं शुभोदय के पाठकों को संदेश तो क्या दे सकता हूँ, उनका अभिनंदन करना चाहूँगा और यह चाहूँगा कि वे अपने भीतर के साहित्य और संस्कृति के तत्वों को और विकसित करें और उनको मरने न दें। मैं शुभोदय के संपादक मंडल को शुभकामनाएँ देता हूँ और इस साहित्यिक ई-पत्रिका के पुष्पित और पल्लवित होने की कामना करता हूँ।

ई.सिं. : अपना अमूल्य समय देने के लिए शुभोदय आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता है।

-xxx-

बी. के. वर्मा 'शैदी'
राजेंद्रनगर, गाजियाबाद-उत्तर प्रदेश
मो. 8368450517

लेख

युगोस्लाविया में भारत

दक्षिण पूर्वी यूरोप में एडियाट्रिक सागर के तट पर अल्बानिया, ग्रीस, बुल्गारिया, रोमानिया, हंगरी, ऑस्ट्रिया व इटली के मध्य था युगोस्लाविया, जिसके राष्ट्रपति थे मार्शल टीटो जिन्होंने भारतीय प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू व मिश्र के राष्ट्रपति कर्नल नासिर के साथ गुटनिरपेक्ष आंदोलन की नींव डाली। युगोस्लाविया के 6 प्रांत थे, सर्बिया, क्रोएशिया, स्लोवेनिया, मोंटेनीग्रो, मैसेडोनिया व बोस्निया हर्जेगोविना और राजधानी थी सर्बिया का शहर बैलग्रेड। ईसाई संत मदर टेरेसा का जन्म 1910 में उत्तरी मैसेडोनिया में हुआ था।

सन 1980 में राष्ट्रपति टीटों के निधन के बाद उत्पन्न राजनीतिक अस्थिरता के चलते भयंकर दंगे व जनसंहार के परिणाम स्वरूप 1990 के आते-आते एक राष्ट्र के रूप में युगोस्लाविया समाप्त हो गया और सभी 6 प्रांत स्वतंत्र देश बन गए। मैं विगत राष्ट्र युगोस्लाविया की ही बात करूंगा।

तत्कालीन युगोस्लाविया के सभी 6 प्रांतों की अलग-अलग भाषाएँ थीं। सर्बिया व क्रोएशिया पड़ोसी राज्य होने के कारण उनकी भाषाएं हिंदी-उर्दू की भांति लगभग मिलती-जुलती थी। केवल लिपि का अंतर था। रूस के निकट होने के कारण सर्बिया भाषा को रूसी लिपि में लिखा जाता था और क्रोएशिया को रोमन में। लगभग समान होने के कारण इसे सर्बो-क्रोएशियन भाषा भी कहा जाता था। रोमन लिपि में होने के बावजूद ध्वनि की दृष्टि से यह हिंदी के समान ध्वन्यात्मक भाषा है, अर्थात जैसा लिखते हैं वैसा ही पढ़ते हैं। साहित्य की दृष्टि से युगोस्लाविया काफी सशक्त एवं समृद्ध था। क्रोशियाई साहित्यकार आंद्रिच को सन 1961 में 'दोना नदी के पुल पर' नामक उपन्यास पर साहित्य का नोबेल पुरस्कार मिला था।

युगोस्लाविया से मेरा संपर्क

तिमारपुर, दिल्ली में डीआरडीओ के संस्थान में INMAS में लाइब्रेरियन के पद पर कार्य करते हुए मैंने सन 1968 में रूसी भाषा का सर्टिफिकेट कोर्स करने के बाद 1969 व 1970 में सर्बो-क्रोएशियन भाषा में सर्टिफिकेट व डिप्लोमा कोर्स सर्वाधिक अंकों से उत्तीर्ण कर लिए। इससे आगे की पढ़ाई के लिए तत्कालीन युगोस्लाव सरकार ने 3 वर्ष के लिए युगोस्लाविया जाने की छात्रवृत्ति घोषित की, उसी के अंतर्गत मेरा चयन हो गया और मैं अगस्त 1972 में यूगोस्लाविया के प्रांत जाग्रेब चला गया। वहां एक वर्ष भाषा का विशेष अध्ययन करने के उपरांत मैंने जाग्रेब यूनिवर्सिटी में लाइब्रेरी साइंस के मजिस्टर कोर्स में प्रवेश ले लिया, जो भारत में एम. फिल के समकक्ष था। इसके लिए मुझे शोध प्रबंध लिखना था। इसका विषय चुनते समय मैंने सोचा कि इतनी दूर आने का लाभ उठाना चाहिए। शोध ग्रंथ केवल डिग्री का माध्यम बनकर अलमारी में बंद न रह जाए, अतः मैंने युगोस्लाविया में भारत के बारे में क्या-क्या उपलब्ध है यह विषय चुना, शीर्षक था "बिबलोग्राफिकल स्टडी ऑफ़ द डेवलपमेंट ऑफ़ रिलेशंस बिटवीन इंडिया एंड युगोस्लाविया" समग्रता का लक्ष्य लेकर मैंने दायरा

इतना बढ़ा लिया कि मेरे गाइड प्रोफेसर ने भी बार-बार सचेत किया। लेकिन मुझे तो धुन सवार हो गई थी। भारत के बारे में प्राचीन समय से लेकर सन 1975 तक मौलिक अथवा अनूदित आद्योपांत, जो कुछ भी उपलब्ध था उसे संकलित करता था, साथ ही साथ रेडियो, टीवी, रंगमंच आदि पर भारत के बारे में की गई प्रस्तुतियों को भी समायोजित करता था, सभी उपलब्ध प्रकाशित संदर्भ ग्रंथ सूचियों के अतिरिक्त साहित्यिक विद्वानों के व्यक्तिगत संपर्कों से जानकारियां एकत्रित करता था, फिर उन्हें कैटलॉग कार्ड के रूप में विषय वार वर्गीकृत करता था। मैं यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया वहाँ हमारे देश का उल्लेख लोक गीतों तक में था।

भारत संबंधी जानकारी

क्रोशिया के निकटवर्ती क्षेत्रों में भारत के बारे में जानकारी सर्वप्रथम ग्रीक लोगों के माध्यम से पहुंची। संस्कृत से क्रमशः पहलवी, अरबी तथा ग्रीक भाषाओं के माध्यम से अनूदित पंचतंत्र भी क्रोएशिया तक पहुंच चुका था। तत्कालीन यूरोप में भारतीय विषयों से संबंधित कोई भी रचना ऐसी नहीं थी जो अनुवाद के माध्यम से क्रोएशिया तक न पहुंची हो।

नाविकों तथा व्यापारियों की भूमिका

इस्लामिक भारत के ऑटोमन साम्राज्य के राजनयिक व सैनिक संबंधों के कारण सिपाही, कैदी, गुलाम तथा व्यापारियों ने लंबी यात्राएं करने के बाद भारत की अतिशयोक्ति पूर्ण जानकारियां प्रस्तुत की जो तटवर्तीय नगरों के बहुत से लोकगीतों का अंग बन गई। गुजरात के मुस्लिम शासको की सहायता हेतु भेजे गए तुर्की जहाज के साथ भी क्रोशियाई नागरिक भारतीय तटों पर पहुंच रहे थे।

मिशनरियों की भूमिका

नाविकों तथा व्यापारियों के साथ-साथ भारत गए क्रोशियाई मिशनरियों की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। इवान फ्लिप वैजदीन ने मिशनरी के रूप में भारतीय मलाबार तटीय क्षेत्र में 13 वर्ष व्यतीत कर संस्कृत में मलयालम भाषाओं के गहन ज्ञान के साथ-साथ स्थानीय भारतीय सांस्कृतिक विरासत का भी परिचय प्राप्त किया। सन 1774 में 25 वर्ष की आयु में इनका लिखा व यूरोप में प्रकाशित पहला संस्कृत व्याकरण लैटिन भाषा में सन 1790 में प्रकाशित हुआ। हाल ही में 18 जून 2025 को जब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी क्रोएशिया की राजधानी जाग्रेब गए थे, तब क्रोएशिया प्रधानमंत्री द्वारा इसी व्याकरण की एक प्रति उन्हें भेंट की गई थी। धारावाहिक "कौन बनेगा करोड़पति" के एक प्रोग्राम में एक करोड रुपए का प्रश्न इसी से संबंधित था।

संस्कृत से सीधे अनुवाद 'अभिज्ञान शाकुंतलम्', बेताल पंचवी शतिका की कुछ कहानियां तथा महाभारत की कुछ कहानी के हुए। इनके अतिरिक्त जर्मन, अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी भाषाओं के माध्यम से भी अनुवाद होते रहे।

20वीं सदी के पूर्वार्ध में अनूदित रचनाओं में नोबेल पुरस्कृत टैगोर छाए रहे। इनके अतिरिक्त महात्मा गांधी व भारतीय स्वतंत्रता संग्राम पर लेखों की श्रृंखला 'आंखों देखा हाल' वर्णन करने जैसी रही।

साहित्यिक क्षेत्र की बात की जाए तो युगोस्लाव पाठक रामायण, महाभारत से ही नहीं बल्कि कालिदास, कबीर, विवेकानंद से लेकर टैगोर, प्रेमचंद, जैनेंद्र कुमार, महादेवी वर्मा, अमृता प्रीतम, कृष्णा सोबती आदि से भी भली-भांति परिचित था। 50 के दशक में हिंदी के कई उपन्यासों व अनेक लघु कथाओं का क्रोएशियाई भाषा में अनुवाद प्रकाशित हुआ। मैंने क्रमवार सभी को संकलित किया हुआ था।

शिक्षा: क्रोशिया के जाग्रेब विश्वविद्यालय की फैकल्टी ऑफ फिलॉसफी में 1874 से संस्कृत भाषा निरंतर रूप से पढ़ाई जा रही थी। वहां इस पर अनुवाद के साथ-साथ शोध कार्य भी चल रहा था। संस्कृत व

हिंदी के अतिरिक्त वहां उर्दू, बांग्ला, गुजराती व तमिल भाषाओं के अध्ययन, अनुवाद व शोध की भी व्यवस्था थी। सन 1959 में भारत विज्ञान पीठ की स्थापना भी की गई। मैंने भी वहां यथासंभव सहयोग प्रदान किया।

रेडियो, टेलीविजन व रंगमंच:

रेडियो जाग्रेब ने अपने स्थापना वर्ष 1926 के प्रथम वर्ष में ही भारत से संबंधित कई कार्यक्रम प्रसारित किए जिनमें टैगोर व अमृता प्रीतम की रचनाएं, कबीर के दोहे आदि वहां के प्रसिद्ध कलाकारों की आवाज में प्रसारित हुए।

जाग्रेब टेलीविजन पर क्रोएशयन सबटाइटल के साथ 'प्यासा', 'मदर इंडिया', 'दो बीघा जमीन', 'दोस्ती', 'आवारा' जैसी फिल्मों के साथ-साथ भारतीय शास्त्रीय नृत्य, त्योहार आदि के कार्यक्रम नियमित रूप से प्रसारित किए जाते रहे।

रंगमंच पर 'अभिज्ञान शाकुंतलम्', 'मृच्छकटिकम', टैगोर के नाटक, भारतीय नृत्य मंडलियों की प्रस्तुतियां, रवि शंकर का सितार वादन, उमा शर्मा की कथक प्रस्तुति, लोक नृत्य महोत्सव, भारतीय फिल्मोत्सव आदि।

इनके अतिरिक्त भारतीय कला, पेंटिंग्स, फोटो, मूर्ति कला आदि की प्रदर्शनियां अंतरराष्ट्रीय मेले में भारतीय मंडप।

शंकुतला पार्क: क्रोएशिया की राजधानी जाग्रेब के निकट ओसियेक नामक कस्बे के मध्य स्थित एक पार्क में एक महिला की सुंदर आदम कद मूर्ति लगी थी। उस पार्क का नाम टीटो पार्क था। मैंने उत्सुकता वश जानकारी जुटाई तो पता लगा कि यह शकुंतला की मूर्ति है। 19वीं शताब्दी में एक जर्मन मूर्तिकार ने इसे यहां स्थापित किया था। मेरी इस खोज के बारे में तत्कालीन समाचार पत्रों में काफी प्रशंसा मिली और तब से इसका नाम 'शकुंलता पार्क' रख दिया गया। यूट्यूब पर 'शकुंलता पार्क इन ओरिजेक' के अंतर्गत इसका चित्र उपलब्ध है।

मेरा योगदान:

मेरा शोध कार्य पूरा होने पर वहां के शिक्षा मंत्री ने मुझे डिग्री प्रदान की। वहां के समाचार पत्रों में इसका विवरण प्रकाशित हुआ। लगभग 250 मील दूर स्थित भारतीय दूतावास से भारतीय राजदूत सपत्नीक मुझे बधाई देने मेरे घर आए तथा बाद में तत्कालीन राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद के आगमन पर मुझे उनसे मिलवाया गया।

वहां से वापस लौटकर आने के बाद यहां अनुवाद कार्य की झड़ी लग गई क्योंकि इस भाषा का जानकार यहां कोई अन्य नहीं था। 'इंडिया इन वर्ल्ड लिटरेचर' विषय पर आयोजित होने वाले अनेक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में 'इंडिया इन युगोस्लाव लिटरेचर' पर केवल मेरी ही प्रस्तुति होती थी। युगोस्लाविया प्रवास के दौरान मैंने क्रोएशियन भाषा की अनेक रचनाओं के हिंदी- उर्दू में अनुवाद किए, जिनमें से कुछ 'आजकल' पत्रिका में प्रकाशित हुए।

सेवानिवृत्ति के बाद दिल्ली विश्वविद्यालय ने 2 वर्ष तक सर्बो-क्रोएशियन की शिक्षा के लिए मुझे अनुबंधित किया। 50 वर्ष से अधिक बीत जाने पर भी मैं इस भाषा को बोल व समझ सकता हूँ लेकिन अपनी संकोची प्रवृत्ति के कारण में अपने कार्य का प्रचार नहीं कर पाया, इसका खेद अवश्य है।

-xxx-

'विदेह' अरविन्द कुमार
लखनऊ - उत्तर प्रदेश
मो. 7408403570

लेख

जयशंकर प्रसाद का वसन्त-वर्णन

अपने काल-जयी महाकाव्य 'कामायनी' में प्रसादजी ने वसन्त का अत्यन्त मनोरम और गूढ़ चित्रण किया है। चतुर्थ सर्ग 'काम' में वह इसप्रकार मिलता है:-

प्रलय-कालीन जल-प्लावन के उतर जाने के बाद सृष्टि ने करवट ली और वसन्त का आगमन हुआ; उस स्थिति में मनु अकेले बैठे हुए वसन्त को संबोधित करते हुए सोच रहे हैं।

"मधुमय वसंत जीवन-वन के,
बह अंतरिक्ष की लहरों में,
कब आये थे तुम चुपके से
रजनी के पिछले पहरों में?

(अन्वय : हे मेरे जीवन-रूपी वन के मधु-सदृश वसन्त! तुम अंतरिक्ष की लहरों में बहकर कब चुपके से रात्रि के पिछले प्रहरों में आये थे?)

श्रद्धा के प्रेरक शब्दों के परिप्रेक्ष्य में मनु ने उस समय चल रहे वसन्त ऋतु को इस प्रकार सम्बोधित करते हुए कहा; वस्तुतः वह केवल ऋतु वसंत का आगमन ही नहीं था, वरन् वह मनु के जीवन में भी वसन्त के आगमन के सदृश था, जोकि श्रद्धा से मिलन के बाद उन्हें लग रहा था। युवावस्था और तज्जनित काम की प्रेरणा इस वासनामय शरीर के लिए वसंत-ऋतु के ही समान हैं! इसलिए मनु ने उपमान के रूप में वसन्त को लेते हुए उसे इस प्रकार संबोधित किया, "हे मेरे जीवन-रूपी वन-उपवन के मीठे प्यारे वसंत! तुम अंतरिक्ष की लहरों पर बहकर, आकाश के रास्ते, रात के पिछले पहरों में कब चुपके से आ गये?" अर्थात् मनु आश्चर्य-चकित हैं कि अचानक यह वसन्त-ऋतु कहाँ से आ गयी? क्योंकि पृथ्वी पर तो विनाश के चिन्हों के सिवाय कुछ भी नहीं दिखलायी पड़ता था, और न ही कहीं कोई ऐसे संकेत थे, जहाँ से वसन्त का आगमन हो सकता हो; अतएव निश्चय ही यह आकाश के रास्ते ही हुआ होगा! मनु का जीवन जल-प्रलय के बाद वीरान वन के समान ही हो गया था।

क्या तुम्हें देखकर आते यों
मतवाली कोयल बोली थी?
उस नीरवता में अलसायी
कलियों ने आँखें खोली थीं?

(अन्वय : क्या तुमको इस प्रकार आते हुए देखकर मतवाली – प्रसन्न-चित्त – कोयल बोली थी? और क्या उस अलसाये हुए सन्नाटे में कलियों ने अपनी आँखें खोली थीं?)

क्या तुम्हें इस प्रकार आते हुए देखकर ही खुश होकर, मतवाली होकर, कोयल ने कूकना शुरू किया था? क्या तुम्हें ही इस प्रकार आते देखकर उस सन्नाटे में – जल-प्रलय के बाद के उस सुनसान में – फूलों की अलसायी हुई, अभी तक न खिली हुई, कलियों ने अपनी आँखें खोली थीं, अर्थात् वे अधखिली कलियाँ खिल उठी थीं? तात्पर्य यह है कि वसन्त के आते ही कोयल बोलने लगी, और फूलों की कलियाँ खिल उठीं। मनु कौतुक प्रकट कर रहे हैं कि क्या वह सब वसन्त के आगमन के कारण ही हुआ था?

जब लीला से तुम सीख रहे
कोरक-कोने में लुक रहना,
तब शिथिल सुरभि से धरणी में
बिछलन न हुई थी? सच कहना!

(अन्वय : जब बड़ी लीला – कुशलता – के साथ तुम पुष्पों की कोरकों में छिपकर बैठना सीख रहे थे, तब सच

बताना कि क्या शिथिल –मन्द-मन्द बहती हुई – सुगंधि से धरती के शरीर में रोमांच नहीं हुआ था?)

ऐ वसन्त! जब तुम अपने करतब दिखलाते हुए, बड़ी चतुराई से, कलियों की कोरों में लुक-छिपकर रहना सीख रहे थे; अर्थात् वसन्त ऋतु के प्रभाव में कलियों और फूलों की आँखों में भी वसन्त आ जाता है, कामुकता छा जाती है; प्राणियों की आँखों की कोरें भी चुपके-चुपके इधर-उधर ताकने-झाँकने लगती हैं। उस समय सुगंधी, जो अभी तक नहीं फैली हुई थी, वह सारी पृथ्वी पर फैलने लगती है, क्योंकि फूल खिलने लगते हैं, और उनके पराग का सौरभ चतुर्दिक फैल जाता है; और परिणाम-स्वरूप धरती के शरीर में स्फुरण होने लगता है, रोमांच होने लगता है; अर्थात् सच बात तो यह है कि वसन्त जब आता है, तो सारी पृथ्वी के मनुष्यों और प्राणियों में कामुकता का रोमांच होने लगता है। चतुर्दिक सुगंधी फैल जाती है, और वे आँखों की कोरों से चुपके-चुपके इशारे करने लगते हैं।

जब लिखते थे तुम सरस हँसी
अपनी, फूलों के अंचल में,
अपना कल-कण्ठ मिलाते थे
झरनों के कोमल कल-कल में।

(अन्वय : जब तुम फूलों के अंचल में अपनी रसभरी – मधुर – हँसी बिखेरते थे, और झरनों के कोमल – कर्ण-मधुर -- कल -कल स्वर में अपना सुरीला मधुर कण्ठ-स्वर मिलाते थे।)

ऐ वसन्त! जब तुम अपनी प्यारी, मीठी, हँसी फूलों के अंचल में -- गोदी में -- फैलाते थे, अर्थात् वसन्त-ऋतु में जब फूल खिलते हैं, तो वे बड़े प्यार से हँसते हुए से लगने लगते हैं। और जब तुम अपना कल-कल करता हुआ मीठा, प्यारा, कण्ठ-स्वर पानी के झरनों के कोमल, मधुर, कल-कल स्वर में मिलाते थे, तो झरने का स्वर अत्यंत कोमल और मधुर लगने लगता था; अर्थात् वसन्त के आते ही वसन्त का प्रभाव जल के झरनों के कल-कल स्वर पर भी पड़ता है, वे कानों को और भी अधिक मीठे और प्यारे लगने लगते हैं।

निश्चिंत आह! वह था कितना,
उल्लास, काकली के स्वर में!
आनन्द प्रतिध्वनि गूँज रही
जीवन-दिगंत के अंबर में।

(अन्वय : अहा! कोयल के उस स्वर में वह कितना निश्चिन्त – चिंता-रहित – उल्लास था! ऐसा लगता था मानो वन-रूपी क्षितिज के आकाश में आनन्द की प्रतिध्वनि गूँज रही हो।)

अहा! कोयल के स्वर में, जो वह वसंत-ऋतु में निकाल रही थी, जो वह कूक-कूक कर रही थी, उसमें कितना उल्लास था, कितनी प्रसन्नता थी; और वह कितनी निश्चिंतता से गा रही थी! अर्थात्वसंत में जब कोयल कूक-कूक करती है, तो एकदम चिंता-विहीन हो जाती है, और वह उस क्षण अत्यंत प्रसन्न एवं रोमांचित भी होती है। उस कूक-कूक को सुनकर ऐसा लगने लगता है मानो आनंद की प्रतिध्वनि, अर्थात् आनंद स्वयं प्रतिध्वनित होकर, जीवन के क्षितिज पर आकाश में गूँज रहा हो! अर्थात् जीवन अत्यंत आनंददायक लगने लगता है।

शिशु चित्रकार! चंचलता में,
कितनी आशा चित्रित करते!
अस्पष्ट एक लिपि ज्योतिमयी-
जीवन की आँखों में भरते।

(अन्वय : हे शिशु-चित्रकार सदृश वसन्त! तुम अपनी चंचलता में – ऊर्जस्विता में – कितनी आशा चित्रित कर देते हो! और उससे जीवन की आँखों में एक अस्पष्ट-सी – न समझ में आने वाली – प्रकाशयुक्त, चमकदार लिपि लिख देते हो।)

वसंत ऋतु बाल-चित्रकार की तरह है, मनु उसे बाल-चित्रकार कहकर संबोधित करते हैं कि 'हे शिशु चित्रकार! तुम अपनी चंचलता में, अपने आमोद-प्रमोद के बीच, अपने खेलों के बीच, जो भी चित्रित करते हो, जो भी चित्र अंकित करते हो, उसमें कितनी आशा रहती है, वे कितने आशा बढ़ाने वाले होते हैं!' अर्थात् छोटे बच्चे जब चित्र बनाते हैं, तो वे बड़े आशा से भरे होते हैं, उनके सृजन में कहीं निराशा का नामो-निशान नहीं होता। इसी प्रकार, वसंत ऋतु के आगमन के साथ प्रकृति भी असंख्य चित्रमयी हो उठती है, और उन्हें देखकर बड़ी आशावादिता बढ़ती है, क्योंकि

सर्वत्र सब कुछ उस समय सृजनात्मक, सकारात्मक, ही तो हो रहा होता है; कुछ भी ध्वंसात्मक नहीं हो रहा होता। ध्वंस पीछे छूट गया होता है, पतझड़ के समय। ऐ वसंत, तुम जीवन की आँखों में एक अस्पष्ट-सी, धुँधली-सी, प्रकाशपूर्ण, चमकदार, चमकीली, लिपि लिख देते हो; अर्थात् भले ही धुँधली ही सही, लेकिन जीवन में फिर से चमक और जीवंतता आ जाती है।

लतिका-घूँघट से चितवन की
वह कुसुम-दुग्ध-सी मधु-धारा,
प्लावित करती मन-अजिर रही –
था तुच्छ विश्व-वैभव सारा।

(अन्वय: लतिकाओं-रूपी–बेलों-रूपी–घूँघट से चेहरे की चितवन– झलक – से वह जो फूलों के दूध जैसी शहद की सी मधुर धारा बहती थी, वह मन को अजस्र रूप से सराबोर करती रहती थी; उसके समक्ष सारे विश्व का वैभव भी तुच्छ था।)

जिस प्रकार घूँघट से मुखड़े की एक झलक दूध की सी मीठी धार मन के अंदर बहा देती है, उसी प्रकार लताओं और बेलों के घूँघट से प्रकृति के मुखड़े की फूलों के दूध सी मीठी, प्यारी धार निरंतर मन के अंदर बहने लगती है। जिसके सामने विश्व का सारा वैभव, सारी संपदा, तुच्छ लगने लगती है। अर्थात् विभिन्न प्रकार की बेलें वसंत ऋतु में जब चारों ओर फैल जाती हैं, बढ़ जाती हैं, तो वे ऐसी प्रतीत होती हैं, जैसे प्रकृति के मुखड़े पर उन्होंने घूँघट डाल रखा हो। और उसमें से प्रकृति का सुंदर दूध जैसा मुखड़ा फूलों के रूप में दिखलायी पड़ रहा हो, जिससे मन और शरीर अजस्र रूप से आनंद-मग्न हो रहा हो। उस वैभव के समक्ष विश्व के सारे वैभव तुच्छ ही लगते हैं; अर्थात् वसंत ऋतु में प्रकृति का जो सौंदर्य होता है, उससे मन और शरीर जितने आनंद-मग्न होते हैं, उतने किसी प्रकार के वैभव, किसी प्रकार की उपलब्धि, से नहीं होते हैं।

वे फूल और वह हँसी रही
वह सौरभ, वह निश्वास छना,
वह कलरव, वह संगीत अरे
वह कोलाहल एकांत बना!"

(अन्वय : वे सब फूल, वह मधुर हँसी, वह सुगन्धि, वे सरस निश्वास, वह कलरव, वह संगीत और वह कोलाहल, अरे! सब कुछ शांत हो गया, एकान्त मात्र शेष रह गया!)

वे सब फूल, और वह सब हँसी जो फूलों के सौरभ – सुगंध -- जैसी चारों तरफ़ फैली रहती थी, वह प्रकृति के निःश्वास जैसा कलरव – प्राणियों का शोर-गुल – वह प्रकृति के विविध क्रिया-कलापों का संगीत, जो निरंतर बजता रहता था, और वह कोलाहल जो सृष्टि में कभी – एक समय -- बना रहता था, वह सब एकांत हो गया, वह सब शांत हो गया! मनु वस्तुतः उस समय आये हुए वसंत को देखकर उस पुरातन काल को – जल-प्रलय से पूर्व के समृद्धि के उस काल को – याद कर रहे हैं, उन पुराने वसन्तों को याद कर रहे हैं, और सोच-सोचकर दुःखी हो रहे हैं कि वह सब नष्ट-भ्रष्ट हो गया, सब शांत हो गया"।

कहते-कहते कुछ सोच रहे
लेकर निश्वास निराशा की—
मनु अपने मन की बात, रुकी
फिर भी न प्रगति अभिलाषा की।

(ऐसा ही सब कुछ कहते हुए मनु ने एक निराशापूर्ण गहरी साँस फेंकी और अपने मन की बात सोचते हुए बैठे थे; फिर भी उनके मन में अभिलाषा की प्रगति नहीं रुकी।)

यह सब कहते-कहते मनु निराशा की निःश्वास फेंकते हुए अपने मन की कुछ बातें सोच रहे थे; किंतु इतनी निराशा की मनोदशा होने के बावजूद उनके मन में अभिलाषा नहीं रुकी थी। तात्पर्य यह है कि इतना भीषण विनाश देख लेने के बावजूद व्यक्ति – प्राणी – पुनः-पुनः इच्छाएँ करना नहीं छोड़ता है।

-xxx-

डॉ. चेतन आनंद
गोविंदपुरम, ग़ाज़ियाबाद-उत्तर प्रदेश
मो. 8586053956

लेख

हिन्दी साहित्य में सूफ़ी काव्य परम्परा

हिन्दी साहित्य के इतिहास में सूफ़ी काव्य परम्परा एक अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली धारा रही है। यह परम्परा न केवल भक्ति और प्रेम की भावनाओं का सुंदर रूप प्रस्तुत करती है, बल्कि धार्मिक सहिष्णुता, मानवीय एकता और आत्मा के शुद्धिकरण का भी सशक्त संदेश देती है। सूफ़ी कवियों ने ईश्वर-प्रेम को मानव-प्रेम से जोड़ा और प्रेम को साधना का सर्वोच्च मार्ग बताया।

सूफ़ी काव्य की उत्पत्ति और पृष्ठभूमि

सूफ़ी काव्य परम्परा का उदय भारत में 13वीं शताब्दी के आसपास हुआ, जब तुर्क-अफ़ग़ान शासन के साथ सूफ़ी सन्त भारत आए। सूफ़ी मत इस्लाम की एक रहस्यवादी शाखा है जो आत्मा और परमात्मा के मिलन की खोज करती है। सूफ़ी कवियों ने 'ईश्वर' को 'माशूक़' (प्रियतम) के रूप में देखा और आत्मा को 'आशिक़' (प्रेमी) के रूप में। भारत में सूफ़ी सन्तों ने जब इस प्रेम के दर्शन को भारतीय धरती पर व्यक्त किया, तो उन्होंने स्थानीय भाषाओं, विशेषतः हिन्दी और उसकी बोलियों का सहारा लिया, ताकि उनका सन्देश आम जन तक पहुँच सके।

सूफ़ी कवि और उनके प्रमुख ग्रन्थ

हिन्दी सूफ़ी काव्य मुख्यतः दो शाखाओं में विभक्त है-शेख़ी शाखा (गुरु-शिष्य परम्परा पर आधारित) और प्रेममार्गी शाखा (ईश्वर को प्रेममय रूप में देखने वाली) इन दोनों शाखाओं के अन्तर्गत अनेक महान कवियों ने जन्म लिया:

1. मलिक मोहम्मद जायसी:

   मलिक मोहम्मद जायसी (1490-1542 ई.) हिन्दी सूफ़ी काव्य परम्परा के सबसे प्रमुख कवि माने जाते हैं। उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पद्मावत' है, जिसमें पद्मावती और रत्नसेन की कथा के माध्यम से आत्मा और परमात्मा के मिलन की रहस्यवादी व्याख्या की गई है। जायसी की भाषा अवधी है, और उनके काव्य में प्रतीक, रूपक और रूपान्तरणों की अत्यन्त गूढ़ता है। वे कहते हैं-

   "मन ही मन खोजे मनुज,
   मन ही पाय न पार।"

   अर्थात् सत्य की खोज भीतर ही करनी है, बाहर नहीं।

2. कुतुबन:

   कुतुबन का ग्रन्थ 'मृगावती' सूफ़ी दर्शन का एक और उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें आत्मा-परमात्मा के मिलन को मृगावती की कथा के माध्यम से प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त किया गया है।

3. मंझन:

   मंझन का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'मधुमालती' है। इसमें प्रेम, त्याग और आत्मानुभूति का भाव अत्यंत

गहराई से प्रकट हुआ है।

4. उस्मान:

उस्मान का प्रमुख ग्रन्थ 'चाँदायन' है, जो हिन्दी की प्रारम्भिक प्रेमकथाओं में से एक है। इसमें चाँद और चंपा की प्रेमकथा के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम का भाव प्रकट किया गया है।

सूफ़ी काव्य की विशेषताएँ

ईश्वर-प्रेम का प्रतीकात्मक चित्रण-सूफ़ी कवियों ने सांसारिक प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम का प्रतीक माना। माशूक़ (प्रेमिका) वास्तव में ईश्वर का प्रतीक है।

रूपक और प्रतीकात्मक भाषा-जायसी, मंझन और कुतुबन ने अपनी रचनाओं में प्रेमकथाओं के माध्यम से आत्मा-परमात्मा के मिलन का रूपकात्मक प्रयोग किया।

आन्तरिक साधना का महत्व-सूफ़ी कवि बाह्य अनुष्ठानों से अधिक 'अन्तःकरण की पवित्रता' पर बल देते हैं।

धर्म-सामंजस्य की भावना-इन कवियों ने इस्लाम और हिन्दू परम्पराओं के बीच सेतु का कार्य किया। जायसी के काव्य में हिन्दू देवी-देवताओं और सूफ़ी विचारों का अद्भुत मेल है।

जनभाषा का प्रयोग-सूफ़ी कवियों ने अवधी, ब्रज और हिन्दवी जैसी लोकभाषाओं में काव्य रचा, जिससे उनका सन्देश आम जनता तक पहुँचा।

सूफ़ी और भक्ति काव्य का साम्य

सूफ़ी और भक्ति कव्यधारा में कई समानताएँ हैं -दोनों ही ईश्वर के साक्षात्कार को जीवन का लक्ष्य मानते हैं। दोनों बाह्य कर्मकाण्डों से ऊपर उठकर 'प्रेम' को सर्वोच्च मानते हैं। दोनों मतों में गुरु की महिमा विशेष रूप से वर्णित है। कबीर, रैदास, और जायसी के विचारों में अद्भुत समानता है, सबने 'ईश्वर-प्राप्ति' को हृदय की अनुभूति बताया है।

सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव

सूफ़ी काव्य ने हिन्दी समाज में धार्मिक सहिष्णुता और मानवता की भावना को सशक्त किया। मध्यकालीन भारत में जब साम्प्रदायिक तनाव बढ़ रहा था, तब सूफ़ी सन्तों ने प्रेम, भाईचारे और एकता का सन्देश दिया। उनकी कविताओं ने साहित्य के माध्यम से भारत की गंगा-जमुनी तहज़ीब को जन्म दिया।

सूफ़ी काव्य परम्परा हिन्दी साहित्य में आध्यात्मिक प्रेम, मानवीय एकता और आत्म-ज्ञान की अनूठी परम्परा है। इन कवियों ने धर्म, जाति और संप्रदाय की दीवारें तोड़कर 'प्रेम' को ईश्वर तक पहुँचने का सबसे सच्चा मार्ग बताया। आज भी जायसी, मंझन और कुतुबन के काव्य भारतीय जीवन में आध्यात्मिक प्रेरणा का स्रोत हैं। जायसी के शब्दों में-"मन ही मूरख, मन ही ज्ञानी, मन ही देव अधमानी।" यही सूफ़ी सन्देश है कि ईश्वर बाहर नहीं, हमारे भीतर है।

-xxx-

अवधेश सिंह 'बंधुवर'

ग्रेटर नोएडा-उत्तर प्रदेश

मो. 9450213555

लेख

साहित्यिक पुरस्कारों की बाढ़, कितनी सही?

अभी कुछ दिन पहले ही इंटरनेट पर एक साहित्यिक संस्था ने हिंदी के 100 वर्तमान बड़े रचनाकार की सूची प्रकाशित की। यदि आप इस सूची को ध्यान से देखेंगे तो निश्चय ही इस रैंकिंग के खोज और चयन पर आपको संदेह होगा। आप जिन रचनाकारों के कृतित्व से परिचित हैं और उनका नाम इस सूची में नहीं देखते हैं तब आप अवश्य ही यह जानना चाहेंगे कि आखिर किस आधार और किन मापदंडों के सहारे राष्ट्रीय स्तर पर 100 साहित्यकारों का चयन करते हुए श्रेष्ठता के क्रम में 1 से 100 तक नाम रखे गये हैं।

प्रश्न लाजिम है कि चयनकर्ताओं में कौन हैं या इसके पीछे का सर्वे-श्रम क्या है। अब ये सूची है- तो है, जिनका नाम इस सूची में है वे इसे इस रूप में प्रचारित कर रहे हैं जैसे "यह रैंकिंग उनके बाजार भाव तय कर रही है और इसके बाद से वे साहित्य के आकाश में चमकते सितारे हो गए हैं तथा बाकी सब इस दौड़ में उनसे पीछे हैं"। पारदर्शी और निष्पक्ष प्रक्रिया से गुजरे बिना इस प्रकार के सम्मान से होने वाला मुगालता दोहरी धार वाली कटार से कम नहीं है। जितना नुकसान यह संस्था की साख का करता है उतना ही नुकसान ये उनका करता है जिनके नाम इस सूची में शामिल हैं। अतः इससे बचने की आवश्यकता है।

स्पष्ट करता चलूँ कि इस रैंकिंग के कर्ता-धर्ता एक वरिष्ठ नागरिक हैं जो एक एन.जी.ओ. चलाते हैं। ये सज्जन कभी-कभार कुछ बन पड़ा तो खुद भी लिखते रहते हैं। देखने को कोई चार-पाँच दर्जन फालोवर भी हैं। इससे ज्यादा उनके संबंध में कोई जानकारी नहीं मिलती है। ऐसे में इस रैंकिंग की प्रामाणिकता प्रश्नों के कटघरे में स्वतः खड़ी हो रही हैं। इसी प्रकार के कई और स्वयंभू साहित्य के क्षेत्र में हैं जो किसी को भी बिना कोई सार्थक मूल्यांकन और अध्ययन के साहित्य सृजन का सरताज बना रहे हैं और किसी को साहित्य रत्न, किसी को साहित्य भूषण, किसी को महादेवी वर्मा के समकक्ष तो किसी को मुंशी प्रेमचंद के समकक्ष बिठाने का कार्य कर रहे हैं।

मेरा अनुभव कहता है कि गिनती में कुछ एक अपवादों को छोड़कर एन.जी.ओ. के रूप में काम कर रही अधिकतर साहित्यिक संस्थाएं साहित्य से जुड़ी पारिवारिक विरासत को ही आगे बढ़ा रही हैं। ये सभी नियमित रूप से सैद्धांतिक होकर भी दिवंगत साहित्यकार पिता या माँ आदि की स्मृतियों के आधार पर उनके जन्म या पुण्यतिथि पर सालाना जलसा करके अपनी पसंद से या परिचित या परिचित के द्वारा नामित लेखकों को साहित्य के आभूषणों से अलंकृत कर रही हैं। कुछ पत्रिकाएँ भी हैं, जो इसी प्रकार के मिलते-जुलते कामों के सहारे खुद

को साहित्य सेवा के प्रमुख किरदार के रूप में प्रस्तुत कर रही हैं। उक्त संस्थाओं में तमाम के सरकारी पंजीकरण या उनकी अकादमी वैधता शून्य है फिर भी वे साहित्य से जुड़े तमाम प्रमाण पत्र वर्षों से वितरित करती आ रही हैं। मै इन कार्यों को किसी प्रकार की चुनौती देने के पक्ष में नहीं हूँ, मेरा प्रयास केवल साहित्य की शुचिता और सार्थकता को बनाए रखने के लिए है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि जिस व्यक्ति को लिखते हुए जुमा-जुमा चार दिन ही हुए हैं, उसके बायोडाटा में भी पुरस्कारों की एक सूची दिखाई देती है। एक बारगी उत्साहवर्धन तथा साहित्यिक कर्म को बढ़ावा देने के लिए इसको उचित ठहराया जा भी सकता है लेकिन यदि प्रामाणिकता की बात आएगी तो यह सब अर्थहीन अभ्यास ही माना जाएगा।

मैंने व्यक्तिगत रूप से इसी प्रकार ही सरकारी संस्थान में जाकर वहाँ से सरकारी पुरस्कारों के चयन प्रक्रिया का अध्ययन किया तो वहाँ सब कुछ नियमानुसार ठीक महसूस हुआ। वहाँ भी यदा-कदा दबे स्वर में चयन पर प्रश्न उठते रहते हैं किंतु मैं उसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मानता हूँ। यह भी एक सार्वभौमिक सत्य है कि इस प्रकार के चयन में शत प्रतिशत लोगों को संतुष्ट नहीं किया जा सकता। सरकारी संस्थानों की स्थापित एवं पारदर्शी चयन प्रक्रिया बहुत से विवादों को स्वत: समाप्त कर देती है और इस प्रकार के पुरस्कार या सम्मान की प्रामाणिकता बनाए रखती है।

विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं द्वारा पुरस्कार वितरण में मानकों से समझौता कई बार आँखों को खटक जाता है। इससे पुरस्कारों की प्रतिष्ठा भी कम होती है जिसका कारण सिर्फ व्यक्तिगत या विचार से जुड़ा दिखाई देता है। विचार प्रश्न यह है कि हम किस प्रकार का साहित्य चाहते हैं। हमें चिंतन करना चाहिए कि साहित्यिक मूल्यांकन और सार्थक मापदंडों के अनुपालन के साथ सुपात्र और श्रेष्ठ की तलाश कैसे हो, ताकि भविष्य में हम एक अच्छे साहित्य से वंचित रहने से बच सकें। अन्यथा वर्तमान में साहित्यिक श्रेष्ठता प्रदर्शन की यह लचीली एवं समझौते वाली प्रक्रिया कहीं आत्मघाती न हो जाए। मेरा मानना है कि प्रामाणिकता की दिशा में कोशिश का अभाव भयभीत करने वाला है।

साहित्यकारों की उत्कृष्टता मात्र किसी एक सूची में नाम को दर्ज कराने या किसी गैर प्रामाणिक पुरस्कार से तय नहीं होती है, बल्कि विभिन्न प्रतिष्ठित सम्मानों, जैसे ज्ञानपीठ पुरस्कार, साहित्य अकादमी पुरस्कार और दिल्ली हिंदी अकादमी या प्रादेशिक साहित्यिक संस्थानों के साहित्यकार सम्मान द्वारा तय होती है, जिनके द्वारा कभी प्रेमचंद, महादेवी वर्मा, दिनकर, निराला, कुँवर नारायण, कृष्णा सोबती, दिविक रमेश, रामदरश मिश्र जैसे महान साहित्यकारों को उनके उत्कृष्ट योगदान के लिए सम्मानित किया गया है, जिनकी रचनाएँ भारतीय संस्कृति और भाषा को निरंतर समृद्ध कर रही हैं।

-xxx-

सुरेश चंद शर्मा
फरीदाबाद-हरियाणा
मो. 9953091619

व्यंग्य

हे भगवान, मुझ पापी को उठा ले अब!

भारत में आधुनिक काल, ज्ञान का कतई नहीं है बल्कि केवल सूचना क्रांति का है। सोशल मीडिया पर अति सक्रिय और दुनियादारी के वास्तविक कामों में अधिकतर निष्क्रिय रहने वाले लोगों को यह भरम होता जा रहा है कि वे अब फोन के माध्यम से प्राप्त कचरे को पाकर सभी महाज्ञानी हो चले हैं जिन्हें कहीं किसी संत महात्मा अथवा ज्ञानीजनों से कुछ जानने, सीखने की आवश्यकता नहीं रह गई है। उनकी दृष्टि में सोशल मीडिया के महासागर में तैरती सामग्री निर्विवाद एवं अकाट्य तथ्यों पर आधारित है जिसे किसी अन्य स्रोत से क्रॉसचेक करने की भी आवश्यकता नहीं है। अब चूंकि ये पूर्ण पुरुष अथवा स्त्री बन चुके हैं अतः इन्होंने मानव कल्याण करने की मुहिम शुरू की है जिसमें ज्ञान का पान करने के लिए पहला व्यक्ति मुझे चुना है। यह भी संभव है कि ये महाज्ञानी मेरी ही तरह के किसी और अज्ञानी को भी सुधारकर कर विद्वान बनाने का या मेरे जैसे दूसरे पापियों को धार्मिक बनाने का या अनैतिक लागों को नैतिकता की राह पर लाने का प्रयास कर रहे हों लेकिन फिलहाल मुझे केवल अपनी ही पीड़ा दिखाई दे रही है, अत: उसी की बात कर रहा हूं।

जब से नासपीटी सरकार ने डिजिटल क्रांति लाने के परम् लक्ष्य के तहत साढ़े तीन सौ रुपए के एक जीबी डेटा को सस्ता किया है तब से मेरे फोन में शांत पड़े सभी कॉन्टेक्ट गहरी निद्रा से जागकर मोबाइल फोन पर तहलका मचाने लगे हैं। उन्होंने सबसे पहले मेरी मूर्खता दूर करने की ठानी है। यहां तक तो मुझे कोई परेशानी नहीं थी लेकिन अचानक मैंने नोटिस किया कि उनके द्वारा मानवता, सामाजिक रिश्तों के महत्व, दुनिया जहान की खबरें आध्यात्मिक अथवा धार्मिक उद्धरणों से सराबोर संदेश थोक के भाव मुझे भेजे जाने लगे हैं।

तब मेरा माथा ठनका कि भाई ये इतना सद्ज्ञान मुझे क्यों दिया जा रहा है जिसे पढ़ना, समझना और उसके कारण भरी फोन की मेमोरी से उसे डिलीट करना मेरे लिए प्रतिदिन कठिनतम कार्य होता जा रहा है। कोई भी ऐरा-गेरा वाट्सअप ग्रुप बनाकर मुझे उससे जोड़ लेता है और वही गुड मॉर्निंग, मिर्च मसाले के चटखारे वाले अति वाहियात, नैतिकता आदि से संबंधित मैसेज मुझे भेजने लगता है। इनमें ऐसे महानुभाव भी शामिल हैं जिन्होंने अपने जीवन में उन कथित उपयोगी संदेशों में से गलती से भी किसी एक संदेश को भी नहीं अपनाया हुआ है। ठीक वैसे ही जैसे गांधी जी के द्वारा दी गई शिक्षाओं पर अमल करने के स्थान

पर उन्हें दीवारों पर अथवा आलेखों में लिखने का रिवाज भारत में रहा है और आज भी बरकरार है। अब मुझे धीरे-धीरे एहसास होने लगा है कि वह सब लोग पूर्ण मनुष्य बन चुके हैं और केवल मैं ही एकमात्र पाप आत्मा बचा हूँ, जिसका उद्धार करने के लिए वह सब मेरे पीछे पड़े हैं। महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी सैकड़ों साल पहले कह कर गए हैं कि-

पर उपदेश कुशल बहुतेरे।
जे आचरहीं ते नर न घनेरे।

किंतु क्या करूं, इतने लोगों द्वारा बार-बार मुझे सही रास्ते पर लाने के लिए किए जा रहे प्रयास यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि मुझसे ज्यादा नीच, गलीच और पापी व्यक्ति इस पृथ्वी पर दूसरा कोई नहीं है। इस अपराध बोध का परिणाम यह है कि अब मेरी परेशान आत्मा यह कहने लगी है कि हे भगवान्, इतने पाप का बोझ मुझसे उठता नहीं है और धरती पर भी यह अनावश्यक भार ही है, इसलिए तू या तो मुझे उठा ले या उन अटपटे संदेश भेजने वालों को इतनी सद्बुद्धि दे दे कि वह मुझे क्षमा करें, मेरे पापों को क्षमा करें और उस अर्जित ज्ञान से थोड़ा बहुत खुद को भी सुधारने के लिए अपने ही ऊपर लागू किया करें। इससे मुझे परम् शांति मिलेगी और लगेगा कि इस पृथ्वी पर मैं ही सबसे बड़ा पापी नहीं हूँ। यह सोचकर या कहूँ कि खुद को समझाकर मैं आराम से शेष जीवन पूरा कर सकता हूँ कि मेरे अलावा भी इस नश्वर संसार में कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें इस तरह की महान शिक्षाओं तथा संदेशों की आवश्यकता है, यानी अच्छा बनने की इस प्रक्रिया में अकेला मैं ही नहीं पिछड़ा हूँ, कुछ और भी मेरी ही तरह पिछड़े हुए हैं। हालांकि मुझे यह कहते हुए लज्जा आ रही है कि आधुनिक दौर में लिखी जा रही कविताओ में भी भाई लोग खूब ऐसा आदर्शवादी ज्ञान पाठकों / श्रोताओं की थाली में परोस रहे हैं जिससे उनका खुद का दूर-दूर तक कभी कोई वास्ता नहीं रहा है। लेकिन देश में लोकतंत्र है, जिसमें ऐसा करना सबका अधिकार है, जिसे कोई नहीं छीन सकता। मुझे भी एक दिन एक महाधूर्त व्यक्ति की ऐसी ही कविता पढ़कर कुछ ऐसा लगा कि-

माता की महिमा पर लिख दी,
एक कविता उसने भी।
जिसकी अपनी खुद की अम्मा,
वृद्ध आश्रम में रहती है।

अंत में परम् पिता परमात्मा से बारम्बार विनती है कि मेरे पापों का हरण करो क्योंकि मेरे संपर्कों की नजर में मुझसे बड़ा अज्ञानी, पापी पूरी पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। मुझे सद्बुद्धि दो, ताकि मैं एक अच्छा व्यक्ति बन पाऊं और मेरे मित्रों की साध पूरी हो।

-xxx-

मधु वार्ष्णेय
बुलंदशहर-उत्तर प्रदेश
मो. 9410615755

यात्रा संस्मरण

उदयपुर डायरी

मानसून पैलेस

दोपहर का समय था हमने सिटी पैलेस से चंद कदमों की दूरी पर स्थित जगदीश मंदिर देखने का निश्चय किया लेकिन हमारे गाइड सूर्या ने बताया कि मंदिर के कपाट बंद हैं आपको शाम तक प्रतीक्षा करनी होगी, हमने सर्व सम्मति से मानसून पैलेस देखने जाने का निर्णय लिया और समय व्यतीत किए बिना हम मानसून पैलेस देखने के लिए रवाना हो गए। मुख्य शहर, उदयपुर से 8 किलोमीटर दूर पिछोला झील के पश्चिम में स्थित मानसून पैलेस राजस्थानी स्थापत्य कला की छटा बिखेरता एक खूबसूरत किलेनुमा महल था, वास्तु शिल्प का अद्भुत नमूना....

अरावली पर्वत श्रंखला के अंतर्गत बाँसदारा चोटी पर समुद्र तल से 944 मीटर की ऊंचाई पर बना यह मानसून पैलेस अपने आप में एक शानदार दर्शनीय स्थल था इसे सज्जनगढ़ के किले के नाम से भी जाना जाता है। इसे सज्जन सिंह ने 19वीं शताब्दी के आसपास मौसम की हलचलों पर नजर रखने के लिए बनवाया था, महाराणा पहाड़ की चोटी पर स्थित इस इमारत को पाँच मंजिला एस्टॉनोमिकल सेंटर बनाने का विचार कर रहे थे किंतु इसके निर्माण के मध्य ही महाराणा की आकस्मिक मृत्यु हो गई जिसके कारण इसका निर्माण स्थगित हो गया, बाद में यह मानसून पैलेस और शिकारगाह के रूप में पहचाना गया।

गाइड के कथनानुसार महाराणा ने इसका निर्माण अपने गृह नगर चित्तौड़ गढ़ को देखने के लिए कराया था। पहले यह मेवाड़ के शाही परिवार के आधिपत्य में आता था किन्तु अब यह राजस्थान वन विभाग के अंतर्गत आता है। हाल ही में इसे आम जनता के दर्शनार्थ खोला गया है। इस किले को उदयपुर का मुकुट मणि भी कहा जाता है। ऊपर किले तक जाने के लिए संकरी घुमावदार सड़क थी जहाँ पर्यटकों को ले जाने के लिए खुली जीप की व्यवस्था थी, संकरे रास्ते और तीखे मोड़ों से गुजरते हुए दोनों तरफ की ऊंची नीची ढलावदार पहाड़ियों को पार करते हुए हमारी उत्सुकता बढ़ती ही जा रही थी, हम बहुत रोमांचित थे।

पहाड़ियों पर कम ऊंचाई वाले पेड़, कंटीली और कुछ सूखी कुछ हरी झाड़ियाँ ही दिखाई दे रही थीं, कहीं-कहीं नीची खाई और गड्ढे थे। लंगूर और दूसरे वन्य जीव भी दिखाई दिए। बीस मिनट में ही हम ऊपर पहुँच गए यहाँ से हमें ऊपर किले तक पैदल ही जाना था, चौड़ा पक्का रास्ता था, कहीं-कहीं सीढ़ियाँ भी थीं। मैं ऊपर पहुँच कर मुख्य दरवाजे को देखकर आश्चर्य चकित थी, बड़ी-बड़ी कीलों से सज्जित विशाल भव्य दरवाजे के अंदर प्रवेश किया, महल की दीवारों को चूना पत्थर और विशाल शिलाओं से निर्मित किया गया था। बहुत विशाल आँगन फिर गलियारे खूबसूरत नक्काशीदार झरोखे मेहराब और ऊंची गोलाकार छतों वाले हवादार कमरे थे, किले के मध्य में संगमरमर के स्तंभों के शिखर पर उत्कीर्ण बेल बूटे और फूल पत्तियों की नक्काशी बहुत सुंदर थी। देखकर मन परी कथाओं में वर्णित कल्पित महल में विचरण करने लगा।

इसकी पहाड़ पर स्थित लोकेशन और वास्तुकला से प्रभावित होकर 1983 में यहाँ जेम्स बॉण्ड की बहुचर्चित मूवी ओक्टोपसी (Octopussy)

को फिल्माया गया था।

घूमते हुए कब दूसरी मंजिल पर पहुँच गए पता ही नहीं चला, किले के मुख्य हॉल में वन विभाग का आफिस था। नियुक्त कर्मचारी उस इलाके में पाए जाने वाले जंगली जानवरों की बड़ी-बड़ी तस्वीरों के माध्यम से पर्यटकों को जानकारी दे रहे थे। यही सब देखते हुए किले के पिछले भाग में पहुँच गए, अहा !! क्या अद्भुत दृश्य था। एक तरफ तो सूरज बादलों से आँख मिचौली करता हुआ अपनी सिंदूरी आभा से पूरे आसमान को सतरंगी परिधान में ढाँपे हुए था, वहीं दूसरी तरफ गहरे स्लेटी और भूरे बादलों की छाया से ढंकी ऊंची नीची पहाड़ियाँ जादुई-सी प्रतीत हो रही थीं, दूर से उदयपुर शहर की धुंधली छवि और सुदूर फैला जंगल और वन्य जीवों की आवाजें एक रहस्यमय सा वातावरण प्रस्तुत कर रही थीं।

पल-पल मौसम बदल रहा था देखते देखते ही सूरज की सिंदूरी आभा विलुप्त हो गई और चारों ओर अंधेरा छा गया शाम के साढ़े चार बजे थे लग रहा था सूरज अस्त हो चुका है, बारिश की हल्की फुहार के साथ हवा की रफ्तार तेज होने लगी, तेज हवा के झोंके और जंगल में साँय-साँय की आवाज भय का वातावरण उत्पन्न कर रही थी, तेज हवा पैर उखाड़ने लगी और वहाँ खड़ा रह पाना मुश्किल होने लगा, हमने दौड़कर मध्य में स्थित बड़े से हॉल में शरण ली।

कुछ ही मिनटों में सारा बादल साफ हो चुका था और तेज हवा का रुख भी नरम पड़ गया था। फिर से धूप खिल गई, मैं झरोखों की नक्काशीदार जालियों को देखती उन बुर्जियो पर बैठकर तस्वीर खिंचवाते हुए आनंदित थी। हमने किले के अग्रिम भाग में प्रवेश किया दोनों तरफ रानियों के कमरे थे और एक बहुत बड़ी बालकनी थी, वहाँ से गुजरते हुए आगे एक बहुत सुंदर बगीचा भी था। तरह-तरह के फूलों से लदे वृक्ष मुझे आकर्षित कर रहे थे, नीले रंग के कमल पुष्प पहली बार देखे, हम महल की ऊंचाई पर स्थित अग्रिम भाग में खड़े थे, हवा और बादलों में तनातनी चल रही थी, मानो दोनों में प्रतिस्पर्धा हो रही हो और दोनों ही अपना शक्ति प्रदर्शन कर रहे हों। छोटी बड़ी गिलहरियाँ और खरगोश कूदते हुए बिल्कुल पास आ जाते और पल में कूदते हुए दूर छिप जाते और वानरों की तो पूछिए ही मत। आपके हाथ से सामान छीनने को तैयार, गाइड ने पहले ही खाने-पीने का सामान गाड़ी से न निकालने की चेतावनी दे दी थी। बादल सूरज और हवा तीनों की जुगलबंदी ने मिलकर एक अद्भुत रहस्यमयी कल्पनालोक-सा उपस्थित कर रखा था, और किसी राजकुमारी की मानिंद मेरा मन उस बादल रूपी घोड़े पर सवार उस अलौकिक कल्पनालोक में विचरण कर रहा था।

तभी फिर से हल्की हल्की फुहार पड़ने लगी, चमकीली पहाड़ियाँ धुंधली-सी दिखने लगीं। बेटे ने भीगने से बचने को कहा, लेकिन मुझे तो भीगना ही था, ठंडी भीगी-भीगी हवा.. कुछ ही मिनटों में दाँत किटकिटाने लगे और गुनगुनी धूप लुका-छिपी का खेल खेलती फिर से आ धमकी। ऐसा ही अद्भुत मौसम होता है मानसून का और ये हमारा सौभाग्य था कि हम जुलाई के मध्य में वहाँ उपस्थित थे, ये खुशनुमा मौसम हमें आनंदित कर रहा था और हमारी इस यात्रा को सफल बनाने के साथ-साथ ही सुखमय भी बना रहा था। अपनी इस यात्रा में मानसून पैलेस के देखने के सुखद अनुभव को जीवन में शायद कभी भुला नहीं पाऊंगी....

भारी मन से मैंने महल से बाहर अपनी गाड़ी की ओर रुख किया और मन ही मन वादा किया उस महल की काई लगी बाहरी प्राचीरों से, नक्काशीदार जालियों से, हवा में झूलते झरोखों और खूबसूरत मेहराबों से विशाल पत्थरों को तराश कर बनाई घुमावदार चौड़ी सीढ़ियों से और वादा किया वाटिका में खिले रंग-बिरंगे फूलों वृक्षों और दुर्लभ नील कमल पुष्पों से,

जीवन में मौका मिला तो फिर आऊंगी तुमसे मिलने...!

-xxx-

डॉ. प्रभाकर जोशी

देवप्रयाग –उत्तराखंड

मो. 941144392

कहानी

जंक

जंक लगी टूटी बाल्टी बाड़े के बाहर फेकते पत्नी भुनभुनायी, "सारी दुनिया का कबाड़ इकठ्ठा कर रखा है इस आदमी ने, घर है या कबाड़खाना"

बर्षो से सहेजी बाल्टी बाड़े के बाहर होते देख वह दौड़ पड़ा, 'इन औरतो को किसी चीज की कीमत का क्या पता'

किसी अनाथ बच्चे की तरह बाल्टी को घर में वापस लाकर उसने सीलन लगी दीवार पर टिका दी। बेपेदें की बाल्टी थोड़ा रुककर एक ओर लुढ़क गयी।

सूरज अभी निकल ही रहा था। पत्नी हर दिन की तरह पड़ोस में खोज खबर लेने निकल गयी थी। गाँव में एक बकरी के मिमियाने भर की आवाज सुनाई दे रही थी।

अचानक रास्ते से लगी झाड़ियों में सरसराहट हुई।

गाँव का युवा प्रधान था। "पाय लागू ताऊ, तुम्हारे लिए खुश खबरी है, समझो तुम्हारी लॉटरी खुल गयी, ये तुम्हारा जमा खज।ना है, बहुत काम आने वाला है।" जगथू ताऊ उसकी बात समझ ही रहा था कि झाड़ियों में फिर से सरासराहट हुई और सिर पर अंग्रेजी टोप, हाफ पेंट पहने गले में कैमरा लटकाये एक अनजान आदमी उसके सामने था।

"ताऊ, ये बहुत दूर से आये हैं। तुम्हारे घर में इन्हें कुछ देखना है "

जगथू हैरान था, उसके घर में ऐसा क्या है जो इस अनजान आदमी को देखना है।

अनजान आदमी को प्रधान घर के आंगन से लेकर पीछे तक बिखरे सामान को दिखाने लगा। जगथू ताऊ इससे भयभीत हो उठा। ये कोई पुलिस वाला तो नहीं जो किसी खोई हुई चीज की तलाश में आया हो।

टोप वाला बिखरे सामान को गहराई से देखने लगा। कत्थई रंग की पुरानी कुर्सियां, नक्काशीदार धुंधला शीशा, सफेद डायल की अकेली सुई वाली घड़ी, बिना फ़ीते के शिकारी जूते, मैल से चमक खो चुके बर्तन, उधड़े धागों के कालीन, रंग-बिरंगी बोतले,पुराने रिकार्ड --। दीवार पर टिकी जंक लगी बाल्टी को देख टोप वाला उछल सा पड़ा, 'ओह , ये भी है यहाँ, बड़ी काम की चीज मिली ये तो"

टोप वाला सभी सामान को कैमरे में कैद करने लगा। जगथू ताऊ पुरखों की बाल्टी के बारे में सोच कर कांप सा गया। क्या चाहता है ये टोपवाला आखिर। प्रधान कुछ देर टोप वाले से खुसर-फुसर करता रहा। जगथू ताऊ को उड़ती नजर से देखते दोनों घर से निकल गए। पड़ोस से लौट रही पत्नी ने घर से निकलते उन्हें देखा तो चौंक पड़ी। आते ही जगथू से पूछा, "प्रधान के साथ कौन आया था ये? क्या काम था?" पत्नी के सवालों पर जगथू ताऊ क्या बोलता, उसकी ही समझ में नहीं आ रहा था आखिर ये दोनों आये क्यों थे।

"अब मुझे क्या पता, ये सब सामान देखकर वह चले गए।" जगथू किसी तरह बोला।

"सामान? पर वो तो अच्छा खासा लग रहा था, इस कबाड़ का क्या करेगा? सच बोलो, कहीं से तुम कुछ चुराके तो नहीं लाये थे? यह सुनते ही जगथू भड़क उठा, "दिमाग खराब है तुम्हारा, तुम्हे मैं चोर दिखता हूँ, जो भी लाया हूँ घरों से पूछ-पूछकर लाया हूँ। चुरा के लाता तो आज जेल में होता, हद हो गयी"

पूरे दिन दोनों में टोप वाले को लेकर बहस होती रही। किसी तरह रात बीती। अगली सुबह हर दिन की तरह पत्नी पड़ोस के लिए निकली तो दरवाजे पर ही उसे प्रधान मिल गया।

"अरे ताई,चलो अच्छा हुआ तुम यहीं मिल गयीं।"

जगथू की अनदेखी कर वह ताई से धीमे-धीमे

बतियाने लगा। प्रधान की आवाज न सुनाई पड़ने से जगथू बेचैन हो रहा था। बात पूरी होते ही पत्नी का चेहरा खुशी से खिल सा उठा था।

"तो कल पक्का" प्रधान ने हाथ उठाते कहा।

जगथू पत्नी से पूछने को ही हुआ तो वह बोल पड़ी,' "बस समझो तुम्हारी लॉटरी खुल गयी।"

"अरे, फिर वही बात, क्या लॉटरी खुल गयी मेरी?”

जगथू बड़बडाने लगा। पत्नी कुछ न सुन गाँव की ओर निकल गयी।

दोपहर का खाना निपटाकर जगथू बाहर खड़ा था कि पाँच-छह मजदूरों के साथ प्रधान आता दिखा। आहट सुन पत्नी भी बाहर आ गयी। एक ओर गर्दन उठाकर उसने प्रधान को इशारा किया तो मजदूरों ने आंगन में पड़ा सामान समेटना शुरू कर दिया। जगथू ताऊ उन्हे रोकने लगा, "अरे, अरे यह क्या कर रहे हो?

तभी ताई सामने आकर बोलने लगी, "अरे, उठाओ उठाओ, रुको मत"

एकाएक आये इस बवन्डर से जगथू बावला-सा हो उठा। पत्नी व प्रधान की मिली भगत पर वह चिल्लाने को हुआ मगर उसकी जैसे आवाज ही गुल हो गयी थी। वह एक चीज पकड़ता तो मजदूर दूसरी चीज उठा लेता। बूढ़ा शरीर आखिर थक गया। थोड़ी देर में सब सामान उठ गया।

"ओह, ये तो रह ही गयी थी। प्रधान दीवार पर टिकी जंक लगी बाल्टी उठाने लगा। जगथू पूरी ताकत लगाते उसके हाथ से बाल्टी छुड़ाने लगा।

"अरे, पुरखों की निशानी है, ये तो छोड़ दो।"

युवा प्रधान से उसकी नहीं चली। पुरखों की बाल्टी भी चली गयी। सूने पड़ चुके आंगन में जगथू सन्न खड़ा रहा। उसको लग रहा था मानो शरीर से आत्मा ही निकल गयी हो।

"ब्याह के दिन के बाद आज दिखा मुझे इतना साफ सुथरा आँगन। भूल ही गए थे कि हमारे घर में भी एक आंगन है।" पत्नी के शब्द उसे विष बुझे तीर से चुभने लगे। वह समझ नही पा रहा था कि क्या बोले। किसी के लिए यह कबाड़ था मगर उसके लिए यह जीवन था।

एक, दो, तीन दिन करते करते एक महीना निकल गया। न प्रधान दिखा और न ही वो अनजान टोप वाला। जगथू की जैसी भूख प्यास ही चली गयी थी। पत्नी कुडबुडाती रही, इस दो कौड़ी के कबाड़ के लिए प्राण दे दोगो क्या? खाना तो खालो। कह रही हूँ जो हुआ है भला ही हुआ है। पर जगथू बड़बड़ाता रहता।

कितनी सुंदर कुर्सिया थी, आह क्या घड़ी थी, और वो जूते जो उस शिकारी ने दिये थे जो यहाँ बाघ मारने आया था और सबसे प्यारी पुरखों की वह बाल्टी। सब गया।

अरे, मिला क्या यह सब बेचकर... ये तो खजाना था खजाना। वह चिल्लाता रहता, पत्नी झल्लाती रहती तो गाँव वाले हँसते रहते।

एक सुबह सामान की स्मृति में खोया वह दरवाजे पर खड़ा था कि सामने से आते मजदूर ने उसे हटाते आंगन में एक बोरी पटकी। एक के बाद एक मजदूरों ने वहाँ बोरियों का ढेर लगा दिया। थोड़ी देर में युवा प्रधान करारे नोटों की गड्डी लिए उसके सामने खड़ा था।

"लो ताऊ, तुम्हारी लॉटरी खुल ही गयी।" गड्डी हाथ में पकड़ाकर प्रधान मजदूरों सहित निकल गया। पत्नी बाहर आई और जगथू के हाथ से गड्डी छीन ले गयी।

जगथू कांपते हाथों से बोरी खोलने लगा। एक क्षण के लिए वह अवाक था। वह बावला-सा जल्दी-जल्दी सभी बोरियाँ खोलने लगा। मृत शरीर में जैसे आत्मा लौट आई थी। आंगन फिर से खोई चीजों से भरने लगा। तभी प्रधान दौड़ता आया, "अरे ताऊ, ये बाल्टी तो रह ही गयी थी।"

साल बीतते-बीतते शहर से लौटा एक गाँव वाला जगथू ताऊ से मिला, 'अरे ताऊ! भूकंप पर बनी एक फिल्म देखी। जानते हो, उसमे क्या दिखा, वह सब सामान जो तुम्हारे यहाँ पड़ा है।'

तो वह टोप वाला पुलिस नही फिल्म वाला था।

जगथू सामान को निहारते हुए स्वर्गीय आनंद में डूब गया।

-xxx-

श्यामल बिहारी महतो
ग्राम-मुंगो, जिला-बोकारो-झारखंड
मो. 6204131994

कहानी

कर्म पुजारी

कामता बाबू को दफ़्तर में लोग गाँधी जी कहा करते थे। यह उपाधि उन्हें यूँ ही नहीं मिली थी। कंपनी काम के प्रति उनका पूर्ण समर्पित भाव! और यह समर्पण की भावना उनके रिटायरमेंट के बाद भी किसी आदत की भाँति कायम रही। अपने कार्यकाल के दौरान शायद ही कभी ऐसा मौका आया हो, जब उन्होंने किसी मजदूर का काम करने से आनाकानी की हो। दूसरों की सेवा की खातिर सदैव तत्पर रहते। सेवा की यह भावना उनके भीतर एक जुनून की भाँति हरदम विद्यमान रहती थी। कोई अंधे से पूछे कि तुम्हें क्या चाहिए ? तो नि : संदेह उसका जवाब होगा, 'दो आँखें' उसी तरह कोई कामता बाबू से पूछते कि आपको क्या चाहिए तो वे कहते 'काम..और काम के सिवाय कुछ नहीं..!' चाहे दफ़्तर का पढ़ाई-लिखाई वाला कोई भी काम हो, बेकार बैठकर समय काटना उन्हें आता नहीं था । लेन -देन के मामले में भी वो अनोखे और अजूबे थे ! अपने सर्विस जीवन में रिश्वत तो कभी ली ही नहीं उसने, बस यही कहते रहे 'यह पाप है ! नाजायज है ! दूसरों का गला दबाना है, उनका हक छीनना है..।'

हाँलाकि इसी गाँधीवादी सिद्धांत को लेकर उनका बड़ा बेटा महेश बाप से खफा-खफा रहता था। दिन भर जाने कहाँ - कहाँ भटकता फिरता और देर रात आकर घर में बाप से लड़ता। दोनों बाप बेटे के बीच मतभेद कभी कम नहीं हुआ। महेश सदैव उबाल में रहता – 'कोई कुछ करना चाहे तो कैसे करे? इस घर में गांधी की आत्मा जो वास करती है।'कामता बाबू कसमसाकर रह जाते। उनके लिए सुकून की बात यह थी कि उनका छोटा बेटा नरेश अपनी बीए की पढ़ाई के साथ-साथ एक अखबार के दफ़्तर में प्रूफ रीडिंग का काम भी सीख रहा था। कामता बाबू को अपने इस होनहार बेटे से ढेर सारी उम्मीदें बंधी हुई थीं। हाँ, तो कामता बाबू जब यह कह रहे होते कि रिश्वत लेना पाप है, दूसरों का हक छीनना है, तो आस -पास के मुस्कुराते चेहरों से अनभिज्ञ होते। जबकि रिश्वतखोरों के बीच ही हर दिन उनका उठना बैठना होता। देखना तो तब दिलचस्प होता, जब कोई मलकटा सरदार अपने दंगल का तिमाही बोनस या फ़िर सिक लीव का पैसा चेक करवाने आता और काम के बदले सौ-दो सौ देने लगता तो वो एकदम से उस पर भड़क जाते; तुम सब मुझे नोट दिखाते हो, कामचोर कहीं के, हमें क्या समझ रखा है, अकाल की ढेंकी..! चल भाग।" सरदार हँसते हुए भाग खड़ा होता। तभी कोई कह उठता "कामता बाबू,आपको इस युग में पैदा नहीं होना चाहिए था।"कामता बाबू बिना कुछ कहे मुस्कुरा उठते थे। लेकिन ऊपरी आमदनी को इस तरह लतियाता देख सेल विभाग के मास्टर बाबू कुढ़ सा जाता था, कह उठता - "कामता बाबू आपको ऐसी जगह नौकरी नहीं करनी चाहिए थी ।"

जवाब में कामता बाबू केवल हँस भर देते थे। निर्धारित समय पर आफिस आना और गोंद की तरह दिन भर अपने काम पर चिपके रहना,उन्हें बहुत भाता था। कंपनी नियम से सदैव बंधे होते। सर्कुलर से कभी इंच भर भी इधर-उधर होते नहीं देखा गया। जोड़-घटाव के मामले में वो खुद एक कम्प्यूटर थे।

सालाना बोनस हो या सैलरी, सहकर्मी सब उन्हीं से 'वेरीफाई' करवाते। अधिकारी भी उनके बेदाग छवि और ईमानदारी से खासा प्रभावित थे। लेबर आफिसर अमरीक सिंह तो यहां तक कह देते "कामता बाबू, सालाना बोनस पर आपका जोड़ ही अंतिम माना जायेगा..।" अपने जीवन और काम को उसने रूटीन बद्ध कर रखा था। आफिस से घर और घर से आफिस। यही उनकी दुनिया थी। बाकी बचा तो सगे- संबंधियों के यहाँ कभी मर- मेहमानी भी कर लेते थे। लेकिन मेला-सिनेमा या अन्य मनोरंजन के साधन कभी उनको आकर्षित नहीं कर सके। हां, वक्त निकाल गांव समाज की बैठकों में जरूर शामिल होते थे, ताकि गांव का भाई चारा हर किसी के साथ बना रहे। उनके जीवन के साथ जुड़े कई दिलचस्प प्रसंग आज भी लोगों को याद हैं। वो भादो माह की एक रात थी। अचानक कामता बाबू बिस्तर से उठ बैठे। उन्हें नींद नहीं आ रही थी। रोगों से मुक्त रमा देवी गहरी नींद सो रही थी। कामता बाबू ने धीरे से दरवाजा खोला और बाहर निकल आये। घर से आफिस की दूरी महज तीन किलोमीटर की थी। जब वह आफिस गेट के सामने पहुंचे तो रात के दो बज रहे थे और रात्री सुरक्षा गार्ड कुर्सी पर बैठे-बैठे ऊंघ रहा था। उसने धीरे से गेट को धकेला और अंदर आ गए। जेब टटोली आफिस की चाबी उनकी जेब में थी। पहले उन्होंने दरवाजा खोला और अंदर जाकर कुर्सी पर बैठ गए। रात को पहली बार अपने ही आफिस में बैठ, अपने ही आफिस का मुआयना कर रहे थे। एक अद्‌भुत अह्सास! जब वापस लौटने लगे तो रात्रि गार्ड लगन सिंह चौंकता हुआ उठ खड़ा हुआ। पहचानते ही पूछ बैठा -"कामता बाबू आप यहाँ इस वक्त..?" "घर में नींद नहीं आ रही थी। बाहर निकला तो टहलते हुए इधर आ गया। यहाँ पहुँचा तो देखा, आप कुर्सी पर ही सो रहे हो..!"

"आप, अंदर भी गये थे..?"

"हाँ, अंदर गया, आफिस खोला, लाइट जलाई, थोड़ी देर बैठा फिर दरवाजा बंद किया और चल दिया..।"

लगन सिंह सोच में पड गया। उसे लगा इन्हें नींद में चलने की बीमारी है। ताज्जुब है ! यह अंदर गया और मुझे पता तक नहीं चला। अगले ही पल कुछ सोचकर वह कामता बाबू के चरणों पर झुक गया था "कामता बाबू, यह बात पीओ साहब से मत कहिएगा, नहीं तो मेरी नौकरी चली जायेगी..।"

"उठो, नहीं कहूँगा। लेकिन इस तरह सोना ठीक नहीं है,लाखों - करोड़ों रूपए की संपति यहाँ पड़ी है, तुम्हारे भरोसे में..चोर लुटेरे हैं..।"

"कसम खाता हूँ, आगे से ऐसा नहीं होगा..!" लगन सिंह ने कहा और कान पकड़ लिए थे।

लोगों ने सुना तो खूब हँसे "कामता बाबू भी हद करते है..!"

इधर कामता बाबू को काफी परेशान देखा जा रहा था। पता चला पत्नी की बीमारी से जूझ रहे है। एक दिन अचानक फुसरो दवा दुकान में मिल गए। बीमार-बीमार से लगे। प्रणाम-पाती हुई, तो पूछा "कैसे है आप, बीमार लग रहे है..?" लगा हिचक कर रो पड़ेंगे, ऐसा भाव उभर आया उनके चेहरे पर।

"पत्नी बीमार है, उसी की दवा लेने आया हूँ..!"

"क्या हुआ भाभी जी को, मनसा पूजा में देखा था,भली चंगी थी..!" मैं हैरान था।

"दो माह पहले सर में तीव्र दर्द उठा था। डॉक्टर के पास ले गया। एक्स-रे हुआ। देख कर डॉक्टर ने कहा है "इसे कैंसर हो गया है !"

"मुझे विश्वास नहीं हो रहा डॉक्टर साहब..।" मै स्तब्ध था।

"आपके न मानने से इसका कैंसर ठीक नहीं हो जायेगा, जब तक है, दवा चलाते रहिए, रीलिफ मिलेगी..!" डॉक्टर ने जोर देकर कहा था। तब से भाग - दौड़ जारी है..सुधीर बाबू..।" भावुक स्वर में कहने लगे "जानते है सुधीर बाबू, जिस दिन मैं रिटायर

हुआ, सबसे ज़्यादा रमा ही खुश थी, मुझसे कहने लगी "अब फुर्सत ही फुर्सत है ! अब हम जहां चाहें, घूम-फिर सकते है, रिश्तदारों से मिल सकते है, उनसे न मिलने जुलने की शिकायत भी अब हम दूर कर देंगे।" बेचारी को पारसनाथ पहाड़ भी हम एक बार न घुमा सके, हम जैसों का ज़िन्दगी इसी तरह इम्तिहान लेती है सुधीर बाबू..!"

इसी के साथ वो चले गए थे। उनको जल्दी जाना था। पर उनके अंतिम शब्दों ने मुझे झकझोर डाला था। अच्छे के साथ ही यह सब क्यों होता है? बहुत देर तक मैं इसी सोच में डूबा रहा।

तमाम भाग दौड़ के बावजूद कामता बाबू पत्नी रमा देवी को नहीं बचा सके। पत्नी की मृत्यु से वो मर्माहत और शोकाकुल तो थे। लेकिन उनके लिए यह कोई अनहोनी न थी। सबका सब कुछ तय रहता है। यह उनका दार्शनिक विचार था। जो अक्सर लोगों से कहा करते थे। सुबह रमा देवी ने अंतिम सांस ली थी। अड़ोस- पड़ोस के लोगों का आना जाना शुरू हो गया था। "कभी जर न बुखार, सीधे कैंसर....!" लोग भी हैरान थे।

रमा देवी की मृत्यु की खबर गांव में फैल चुकी थी। सगे- संबंधियों का भी आना शुरू हो गया था। घर में मातम छाया हुआ था और सबकी आँखें नम थी। कामता बाबू एक कोने में खड़े शोक में डूबे हुए थे। रोने वालों में सबसे ऊंची आवाज महेश की थी, जो कहीं से पीकर आया था और आंगन के बीचों-बीच खड़ा था। छोटा बेटा नरेश मां की शवयात्रा की अंतिम तैयारी में लगा हुआ था। रमा देवी के सिरहाने अगरबत्ती जला दी गई थी। अब सबकी निगाहें कामता बाबू पर आ टिकी थी। नरेश बाप के करीब पहुंच कंधे पर हाथ रखा और फफककर रो पड़ा " बाबू जी, मां..अ !" लगा कामता बाबू भी रो पड़ेंगे।

"लोगों से अब भी कहते सुना जा रहा था" बेचारी गौ थी..गौ..! "

"कम खर्च से भी कैसे घर चलाया जाता है, यह कोई रमा देवी से सीखे ।"

"कम पैसों को लेकर कभी पति को कोसते नहीं सुना..!"

"यह बड़ी बात है..! "

तभी जीप रूकने की आवाज ने सबका ध्यान अपनी ओर खींचा।

"कामता बाबू के दफ़्तर के साथी होंगे..।" किसी के मुँह से निकला। परन्तु वह धनपत सिंह था। आफिस का चपरासी। उसे आया देख कुछ देर के लिए कामता बाबू भी सोच में पड़ गये "इस तरह धनपत का अचानक से आना... क्या वजह हो सकती है? वो भी कोलियरी जीप से आया है, कामता बाबू को मालूम था धनपत साइकिल से आना जाना करता है। फिर यह जीप ...?" कामता बाबू के दिमाग में सवाल ही सवाल थे..." कामता बाबू के मन में यह उमड़-घुमड़ चल ही रहा था कि तभी उसे चेतलाल की कही बात याद आई। परसों ही वह बतला रहा था "कामता बाबू, लगता है कंपनी को लाखों का एल बी लगेगा..।"

"क्यों,ऐसी क्या बात हो गई है..?"

"दोनों कम्प्यूटर खराब हैं। पानीपत और रोपड का कोल बिल रूका पड़ा है।"

"कहीं इस जीप को मेरे लिए तो नहीं भेजा गया है..?"

तभी धनपत सिंह सामने आया था। उसने प्रणाम के साथ ही मैनेजर अग्रवाल साहब का पत्र उन्हें पकड़ा दिया। पत्र खोला। लिखा था "कामता बाबू, इस वक्त हमारे सामने एक समस्या आ खड़ी हो गई है। पंद्रह तारीख तक पानीपत और रोपड का बिल भेजना है और हमारे दोनों कम्प्यूटर खराब हो

गए हैं, मास्टर बाबू तो है, पर उसके जोड घटाव पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। लाखों का मामला है। हमें आपकी मदद चाहिए। मैं जानता हूँ, आप रिटायर कर चुके है। आपको मजबूर नहीं किया जा सकता है। लेकिन कंपनी के लिए आज भी आप बहुत खास है। आज भी हमें आप पर पूरा भरोसा है..कुछ रकम भेज रहा हूँ, अस्वीकार मत कीजियेगा। आपका ..अग्रवाल साहब मैनेजर..।" धनपत ने दूसरा लिफाफा कामता बाबू को पकड़ा दिया था।

"भतीजे, अच्छा होगा, दाह-संस्कार के लिए माँ को सीधे काशी ले जा..।" पड़ोसी लटन चाचा नरेश से कह रहा था -"सब काम एक ही साथ निपट जायेगा। काशी में दाह-संस्कार बड़ा पुण्यकर्म है, जलने वाले और जलाने वालों का जीवन भी तर जाता हैं..! बाप से कहो, वो हाँ कह दे..।"

"अरे, मैं तो कहूँगा, बाप से पूछना बेकार है।" सगा जेठा ने कहा -"जिस आदमी ने आज तक घर में सत्यनारायण कथा तक न होने दी, उनसे काशी ले जाने की बात करोगे तो कहेगा "सब फिजूल खर्ची है, वहाँ पण्डो का पेट भरना है...।"

बढ़ते शोरगुल से कामता बाबू का ध्यान भंग हुआ। जीवन की पटरी ने उनको आंगन में खड़ा कर दिया। उन्होंने वर्तमान हालात का जायजा लिया। दोनों बेटे उन्हीं की ओर देख रहे थे। कामता बाबू को लगा उन्हें अपना कर्म नहीं छोड़ना चाहिए। आज तक तो वो कर्म को ही जीता चला आ रहा था। जीना-मरना संसार का दस्तूर है। जब वह नहीं बदलता है, फिर हम क्यों बदलें, क्यों पीछे हटें अपने कर्म से। इसी के साथ उलझनों से वो बाहर निकल आए थे। दोनों बेटों को उसने पास बुलाया और कहा-"मुझे अभी दफ़्तर जाना है। मां की दाह-संस्कार तुम दोनों को करना है, कहां और कैसे करोगे, आपस में तय कर लो..।"

चलने से पूर्व उन्होंने अग्रवाल साहब का भेजा लिफाफा नरेश के हाथ में थमाते हुए कहा "इसे संभाल कर रखो, इसमें जो भी रकम है, माँ के श्राद्ध कर्म में काम आयेंगे, मैं चलता हूँ..चलो धनपत..।"

"इस तरह चले जाने से लोग क्या कहेंगे "यकायक मन में आये इस विचार ने कामता बाबू के बढ़ते कदम पर ब्रेक लगा दी। उसने रमा देवी की ओर देखा,दो कदम आगे बढ़ आये। उस पत्नी के खातिर जो आज तक उनके साथ हर सुख-दुख में भागीदार बनी रही। और जो अब इस दुनिया में नहीं रही। उन्होंने मृतशैया पर लेटी पत्नी से कहा "क्षमा करना रमा, तुमने अपना कर्म पूरा किया, अब मैं अपना कर्म करने जा रहा हूँ..! " डबड़बाई आँखों को कामता बाबू ने गमछे से पोंछा और धीरे से धनपत के पीछे हो लिए।

नरेश, महेश से कह रहा था "दादा, ठाकुर से कह दो, गांव में खबर कर दें, माँ का दाह-संस्कार, दामोदर घाट पर होगा, पुण्य- प्रताप के चक्कर में आदमी सदियों से लुटाते रहे हैं । लेकिन हमें वही गलती नहीं करनी है। मनुष्य का जीवन कर्म के साथ जुड़ा हुआ है, उनके लिए कर्म ही धर्म है ! काशी-बनारस में दाह-संस्कार से लोगों का पाप नहीं धुल जाता..!"

नरेश की कही बातें जीप पर सवार हो रहे कामता बाबू के कानों में भी पहुंची थी। उनके अंदर का द्वंद्व छँट चुका था। और वो शांतचित्त नजर आने लगे थे।

-xxx-

पूनम सुभाष

कौशांबी-गाजियाबाद-उत्तर प्रदेश

मो. 9999845402

कहानी

रिज़क

आज नाश्ता बना रही थी जब पतिदेव ने बताया कि बिजनौर वाले मामा नहीं रहे। मैंने अफसोस प्रकट करते हुए कहा कि हमें भी संस्कार में जाना है तो अभी निकलना होगा। गाजियाबाद से बिजनौर पहुंचने में तीन घंटे तो लगेगें। पति ने कहा हाँ, तुरंत चलो संस्कार से पहले पहुँच जाएंगे और आना जाना ही करते हैं। यह सब पैक कर लो। मैं तुरंत बिना कपड़े बदले और एक जोडा साथ लेकर चल दी। पतिदेव ने भी एक जोड़ा रख लिया एक छोटा सा बैग तैयार करके घर की जिम्मेदारी बिटिया पर डालकर मैं बिजनौर की ओर रवाना हो गई। रास्ते भर में पति अपने ममेरे भाई से संस्कार के समय से अपनी वापसी का हिसाब लगा रहे थे और साथ ही शतायु बिताकर जाने वाले मामा के साथ बचपन के बिताए क्षणों को भी याद कर रहे थे। उन्होंने अपने एक मित्र से मामा जी के पार्थिव शरीर पर डालने के लिए चादर आदि के लिए अनुरोध कर दिया था।

संस्कार बैराज पर ही होना था, जो बिजनौर से आठ-दस किलोमीटर पहले गंगनहर पर पडता है इसलिए तय हुआ कि बैराज से ही वापिस आ जाएंगे। समय बचेगा बिटिया को भी रात को अकेले नहीं रहना पड़ेगा। बाकी तेरहवीं वाले दिन दुबारा आ जाएंगें।

समय से पूर्व बैराज पर पहुँच गए थे मामा जी का पार्थिव शरीर करीब आधे घंटे बाद आया हमने दिवंगत मामा जी के शव पर चादर चढ़ाई और प्रणाम किया तो वहां मौजूद सभी लोगों ने मुझसे संस्कार से दूर रहने का अनुरोध किया कि स्त्रियों की उपस्थिति वर्जित मानी जाती है। मैंने चुपचाप सभी की आज्ञा के आगे सिर झुका दिया और पति से कहा कि मैं गंगा के महिला घाट की ओर चली जाती हूँ। आप संस्कार के बाद वहीं आ जाना। मैं वहां से चल दी।

महिला घाट पर पहुंचकर कई लोगों को गंगा में स्नान करते हुए देखकर मुझे भी लोभ हुआ कि मैं भी स्नान कर लूं। घाट के बाहर फूल बेचने वाली एक महिला से पूछा, 'पानी ज्यादा गहरा तो नहीं है? मैं नहा सकती हूँ?'

'अरे! जीजी, जब गंगा मैया सामने हो तो डुबकी जरूर लगानी चाहिए' कहते हुए उसने एक प्लास्टिक मग मेरे हाथ में थमा दिया और मैं चुपचाप घाट की सीढ़िया उतरकर स्नान करने लगी। महिला घाट पर मैं अकेली थी अपना सामान एक सूखे कोने में रखकर स्नान का पूरा आनंद लेकर और कपड़े बदलकर लौटी तो गीले कपड़ों के लिए कोई भी प्रबंध न होने का ध्यान आया। तभी फूल बेचने वाली महिला ने बड़ी आत्मीयता से मेरे हाथ से कपड़े लेकर निचोड़कर पास ही फैला दिए। मैं हैरानी से उसे देख रही था कि अभी दस पंद्रह मिनट की जान-पहचान में किस तरह से अपनापन दिखा रही है यह साधारण-सी औरत।

'जीजी थोड़ी देर तो रूकोगी, और कौन हैं तुम्हारे साथ? क्या कोई घर परिवार से नहीं आया'। मैंने उसे सारी स्थिति समझाई तो कहने लगी 'अभी तो बहुत टाइम लगेगा। पर कपड़े तो फिर भी नहीं सूखेंगे। आप आस-पास घूम लो, मैं यहाँ हूँ, कोई और सामान रखना हो तो रख लो, नहीं तो ध्यान लगा कर बैठ जाओ- गंगा मैया की आराधना में।' मुझे थोड़ा डर भी लगा कि कहीं कुछ गायब ही न कर दे... मेरे पास हालाँकि कुछ भी कीमती नहीं था। पर फिर भी! मैंने सोचा क्यों न इससे बातें ही की जाएं।

'तुम यहाँ कब से हो?'

'मुझे दो साल हो गए'

'और उससे पहले?'

'उससे पहले बहुत कुछ था। पर वो सब कुछ था ही नहीं। अब कुछ नहीं है, पर सब कुछ है।'

उसकी पहेलीनुमा बात का दर्शन मुझे समझ में नहीं आया मैंने कहा, 'क्या मतलब, मैं समझी नहीं।'

'क्या करोगी जीजी समझकर बस उसने ठंडी सांस भरी। मैंने कहा कि कुछ तो बताओ। वो अपनी कहानी कहने लगी, 'जीजी हम नगीना में रहते थे। मेरे पति तीन भाई थे। यह सबसे बड़े थे। सास-ससुर गुजरने के बाद हम ही सबसे बड़े थे और मेरी तीन बेटियां हैं मेरे दोनों देवरों के दो दो बेटे थे। खेत खलिहान, हवेली भरे-पूरे परिवार की पूरी जिम्मेदारी मेरे पति ने संभाल रखी थी दोनों देवरों का काम उनका हाथ बंटाना और अपनी मर्जी की जिंदगी जीना था। हम सब खुश थे। तभी एक दिन छोटे देवर के बड़े बेटे का एक ट्रैक्टर से एक्सीडेंट हो गया और उसकी टांग बुरी तरह ज़ख्मी हो गई थी। अस्पताल ले जाना मुश्किल था लॉक डाउन चल रहा था। मेरा देवर और उसका सगा बाप भी उस बीमारी के डर से अस्पतालों के चक्करों से डर रहा था मगर मेरे पति ने हिम्मत नहीं हारी और उसे लेकर अस्पताल चले गए। उसकी टांग पर पलस्तर चढ़वाकर उसे घर लिवा लाए मगर दो-चार दिन बाद ही उस जानलेवा बीमारी का शिकार हो गए और चल बसे। घर के लोगों ने तो संस्कार भी करने से मना कर दिया था। मेरी बेटियो ने हिम्मत दिखाकर इसी बैराज पर अपने पिता का संस्कार किया। बड़ी बेटी की शादी यह तय करके गए थे सो उसके ससुराल वाले उसी तारीख को उसी माहौल में बेटी को ब्याह कर ले गए। कुछ खास खर्च नहीं हुआ था।'

छह आठ महीने बाद जब सब ठीक होने लगा तो मेरी दो बेटियां भी उस घर में बहुत ज्यादा नज़र आने लगी। हमारी दाल-रोटी, कपड़ा-लत्ता, रहन-सहन मेरे देवर देवरानियों और उनके बेटों को बहुत खलने लगा और हर बात पर ताने, नीचा दिखाना उनकी आदत बनती जा रहीं थी।

मंझली बेटी ने बारहवीं पास कर ली है। कॉलेज जाने लगी है। और छोटी बेटी यहाँ पास ही दो किलोमीटर पर सरकारी स्कूल में नवीं क्लास में है।

पर तुम यहाँ कैसे पहुँची?

जीजी उन्हें लग रहा था कि हमारे हिस्से की जमीन जायदाद देनी पड़ेगी तो उनके हिस्से कम रह जाएंगे और दोनों बेटियों की शादी का खर्चा भी उठाने का डर था उन्हें। एक दिन मेरी बड़ी बहन, उसके पति भी इसी बीमारी से चल बसे उसके पति की बैराज के दूसरे कोने पर चाय-समोसे और खेल खिलौनों की दुकान थी जिसे उसने बाद में संभाल लिया। मेरे घर पर आई तो देवरानी ने उनके सामने ही बोल दिया देखो इनकी ओर से कमाई तो हो नहीं रही पर इनके खर्चों मे कोई कमी नहीं है, उस पर ये दोनों बोझ भी तो उतारने हैं कहते हुए मेरी बेटियों की ओर इशारा किया तो मेरी बहन की सहनशक्ति जवाब दे गई। उसने सबके सामने कह दिया कि आप जिसके बल पर इनके और अपने खर्चे चला रही हो वो इसके पति की देन है। बस घर में इतना हंगामा हुआ कि हमारा जीना मुहाल हो गया। मेरी मंझली बेटी किसी भी कीमत पर अपना बार-बार अपमान सहने को तैयार नहीं थी। हम वहां सब कुछ छोड़कर बड़ी बहन के पास आ गए और उसने मुझे यहाँ फूलों की दुकान खुलवा दी बस अब किसी बात की कमी नहीं।''

इतने में एक लड़का दो चाय के गिलास ले आया। मैंने कहा 'अरे मैंने नहीं मंगवाई।'

'नहीं जीजी, मैंने आपके लिए मंगवाई है, मेरा भी यही टाइम है चाय पीने का'

मैंने गिलास थाम कर कहा, पर..

'पर वर कुछ नहीं नहाकर निकली हैं, सफर करके आई हैं, चाय पी लो'।

चाय पीते हुए मैंने पूछा- 'तुमने अपनी जमीन-जायदाद के हिस्से के लिए कोई कोर्ट कचहरी नहीं की'।

'छोड़ो न जीजी, जब आदमी नहीं रहे जो अपने हों वो अपने न रहें तो जमीन जायदाद कहां रहेगी वो भी तो आखिर छोड़नी है'।

'तो तुम रहती कहाँ हो?'

'दुकान के पीछे दो पक्के कमरे हैं, बस हम दोनों

बहनें अपने बच्चों के साथ खुश।

उसकी कहानी सुनकर और उसका सेवा भाव देखकर मैंने उसे पचास का नोट थमाना चाहा उसने हाथ जोड़ दिए। बोली 'न, जीजी न, कोई बिरला ही आता है जिससे दिल की बात की जाती है, इसका मोल कैसा? फूल तो तुम आज चढ़ाओगी नहीं, संस्कार पर आकर यहां पूजा नहीं होती। फूलों के पैसे ले लेती। वो व्यापार होता, यह तो प्यार है'।

उसका दर्शनशास्त्र मुझे किसी अलग ही दुनिया का लग रहा था। तभी सभी रिश्तेदार लौटते हुए दिखाई दिए। मैं गीले कपड़े समेटने के लिए मुड़ी तो देखा उसने उनकी पैकिंग के लिए भी एक प्लास्टिक बैग का प्रबंध कर दिया था। मैं कृतज्ञ थी और अपराध बोध भी था कि मैं उसके लिए कुछ भी नहीं कर पा रही।

उससे विदा लेकर जब मैं गाड़ी में बैठी तो पति ने गाड़ी बिजनौर की ओर ही मोड़ी तो मैंने कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि कल ही उठावनी करनी होगी क्योंकि परसों से नवरात्र आरंभ हैं। मगर हम तो तैयारी से नहीं आए। कोई कपड़े नहीं लाए। उन्होने कहा कोई बात नहीं यहीं से खरीद लेंगे। कल गुरूद्वारे में 11 बजे पाठ है।

मामा जी के घर पहुंचते ही सबसे मिलने जुलने और भोजन करने के बाद जब मैंने उनकी छोटी बहू को अपने कपड़े न लाने की व्यथा बताई तो वह तुरंत पास में रहने वाली अपनी छोटी बहन के घर ले गई। जैसे ही मैंने उसकी बहन के घर में प्रवेश किया तो देखा कि बाहर की बैठक तो मानों कपड़े की एक दुकान ही थी। उससे मैंने केवल एक कल पहनने के लिए रेडिमेड सूट दिखाने को कहा तो उसने कई सूट साडियां मेरे सामने बिना समय गंवाए रख दीं। मैंने उससे केवल एक सूट अपने नाप का पैक करने के लिए कहा लेकिन उसने लाख मना करने के बावजूद 5 सूट और 3 साड़ियां पैक कर दीं। एक साड़ी तो मैंने सोच लिया था कि उसी फूलवाली को उपहार में दूँगी। ज्यादा कपड़े न लेने का इरादा करने के बावजूद रिश्तेदारी के मान में मुझे मन मारकर खरीदनी पड़ी जिनकी मुझे कोई जरूरत नहीं थी। पति ने तो अपने एक दोस्त का ही कुरता पायजामा पहनकर काम चला लिया।

अगले दिन गुरूद्वारे के पाठ और उठावनी की रस्म के बाद हम वहां से सबसे विदा लेकर चल दिए। बैराज आते ही मैंने पति से गाड़ी रोकने को कहा तो उन्होंने कहा अब यहां क्या है तो मैंने कहा यहां बहुत कुछ है उसके उपहार की साड़ी लेकर मैं उनसे यह कहकर नीचे उतर गई कि दस मिनट लगेंगे।

मैं जैसे ही फूलवाली के पास पहुंची तो मुझे देखते ही खुश हो कर कहने लगी 'जीजी फिर स्नान करोगी क्या?'

'नहीं तुमसे मिलने आई हूँ...' कहते हुए मैंने उसे साड़ी का पैकेट दिया तो कहने लगी 'अरे! यह क्या जीजी? आप ऐसा मत करिए' क्यों भार चढ़ा रही हो?' वह किसी भी तरह उसे लेने को तैयार नहीं थी। पर मैंने भी उसे भावुक होकर कहा कि जीजी कह रही हो और रिश्ते की कद्र भी नहीं कर रही हो, चुपचाप रख लो। साड़ी रखते ही कहने लगी, 'सच कहूँ जीजी मैं सिर्फ रिज़क में विश्वास रखती हूँबाकि सब बोझ है'

उसके दर्शन में मेरी विशेष रूचि थी मैंने पूछा 'रिज़क किसे कहती हो?'

'रिज़क होता है अपना कमाना, पेट भर खाना और किसी का दिल न दुखाना बगैर किसी चिंता के गहरी नींद सोना बाकी सब बोझ है। मेरे पास जब भरा पूरा घर सब था, पर ढेरों गहनों, कपड़ों गाड़ियों बंगले के बाद भी रिजक नहीं था जो आज है।' उसने दुबारा दोहराया 'रिजक केवल अपना कमाना-खाना और अच्छी नींद लेना और रब का शुक्राना ही है इसके अलावा कुछ नहीं।'

मैं उसकी रिज़क वाली बात को दिल से मान गई और उसके गले लग कर विदा लेकर गाड़ी में बैठकर पीछे रखे खरीदे हुए कपड़ों की गठरी को देखकर सोचने लगी वास्तव में मैं भी हाथ में बोझ और मन में रिज़क का ज्ञान लिए जा रही हूँ।

-xxx-

डॉ. पुष्पा गर्ग
हापुड़-उत्तर प्रदेश
मो. 9917473730

कहानी

वो रद्दी वाला

यह कहानी एक साधारण इंसान की असाधारण ईमानदारी और संवेदनशीलता की है। इतिहास के अध्यापक श्रीकांत का यह चरित्र उस मूल्यवान सत्य का प्रतीक है कि जब भी मनुष्य अपने अंतःकरण की आवाज़ सुनता है, वह समाज में करुणा और सच्चाई का दीप जलाता है। रद्दी में बिकने वाली किताबों के साथ लौटती है एक गुम हुई आशा — और श्रीकांत के हाथों इतिहास एक बार फिर इंसानियत के पन्नों पर दर्ज होता है।

"रद्दी ले लो! रद्दी ले लो!"

गली के मोड़ से आती यह आवाज़ जैसे घर की निस्तब्धता को भेद गई। श्रीकांत ने किताब से सिर उठाया, आवाज़ कानों में पड़ी और मन किसी अनकहे आकर्षण से खिंच उठा। चारपाई से उतरते ही पुकारा — "अरे ओ रद्दी वाले भाई! ज़रा ठहरना, मुझे भी कुछ देना है।"

रद्दी वाला अपनी खटारा गाड़ी रोककर खड़ा हो गया। श्रीकांत भीतर गए, कुछ पुराने अख़बार, पत्रिकाएँ और आधी पढ़ी किताबें उठा लाए।

श्रीकांत — इतिहास के प्राध्यापक, विचारों में गहराई, आचरण में सादगी का प्रतीक। ज्ञान का भंडार, पर भाग्य का खिलवाड़ — सरकारी नौकरी अब तक दूर का सपना। फिर भी जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण सहज और निर्मल था — जैसे कमल कीचड़ में भी अपना सौंदर्य बनाए रखता है। कहते हैं — "कर्म ही पूजा है।" वे भी अपनी डगर पर संतोष का दीप जलाए चलते थे।

रद्दी वाले ने रद्दी को तराज़ू पर तौल किया, पैसे गिने और गाड़ी में रद्दी पलटने लगा। श्रीकांत की नज़र अचानक उसकी गाड़ी में रखी कुछ साफ़-सुथरी किताबों पर जा टिकी। उन्होंने पूछा —"भाई, ये किताबें कहाँ से आईं?"

लड़का बोला —"बाबूजी, पीछे वाली गली में जो बूढ़ी अम्मा रहती हैं, उन्होंने दी हैं। घर में जगह नहीं थी शायद।"

वह किशोर, गरीबी में पला मगर चेहरा निष्कपट था, जैसे जीवन की धूल अब तक उसके मासूमपन को छू न पाई हो। श्रीकांत ने ममता से कहा —"भाई, ये किताबें मुझे दे दो, जितना पैसा चाहिए ले लो।"

लड़का झिझका, पर श्रीकांत ने सौ रुपये उसकी हथेली में रख दिए।

रद्दीवाला पुकारता रहा —"बाबूजी, ज़्यादा पैसे दे दिए! कुछ वापिस ले लीजिए!"

पर श्रीकांत के कान उस पुकार से परे किसी और लोक में जा पहुँचे थे, शायद मनुष्यता के उस मंदिर में, जहाँ लालच प्रवेश नहीं कर पाता, जहाँ केवल करुणा रहती है।

अगले दिन जब वे उसी गली से गुज़रे, तो एक घर से तीखी आवाज़ें सुनाई दीं —"अम्मा, आपने सब

बेच डाला! कितनी मेहनत से मैंने ट्यूशन पढ़ाकर पैसे जुटाए थे कॉलेज की फीस के लिए—और आपने वो किताबें रद्दी में बेच दीं!"

श्रीकांत के कदम जैसे ज़मीन से चिपक गए। वे बिना कुछ बोले लौट आए। घर पहुँचकर किताबों को उलटने-पलटने लगे। अचानक एक किताब के पन्नों में एक लिफ़ाफ़ा मिला, जिसमें दो-दो हज़ार के चमचमाते नोट मुस्कुरा रहे थे। क्षणभर को लगा, जैसे धरती रुक गई हो। उनकी आँखों में अचरज और आत्मसंघर्ष के दो समुंदर उमड़ पड़े। मन बोला —"हे ईश्वर! शायद तूने मुझे इसी कसौटी के लिए चुना है।"

वह रात उन्होंने आँखों में काटी। नींद जैसे रूठकर किसी और देश चली गई हो। बार-बार मन में यह विचार आ रहा था कि संसार में कुछ भी बेकार नहीं है। जो वस्तु किसी एक व्यक्ति के लिए रद्दी है वही किसी दूसरे के लिए बेशकीमती हो सकती है और जो बाहर से बेकार दिखाई दे सकती है, सस्ती दिखाई दे सकती है, वही अंदर से बहुमूल्य हो सकती है। इस घटना ने उसे यही शिक्षा दी थी। व्यक्ति अपनी स्थिति और सामने वाले के रंग रूप से कितना धोखा खा सकता है, इसका उन्हें एहसास हो रहा था। इन्हीं ख्यालों में कब रात गुज़र गई, पता ही नहीं चला। सुबह हुई। आज कॉलेज की छुट्टी थी। श्रीकांत ने धीरे-धीरे कदम उसी घर की ओर बढ़ाए। दरवाज़ा खटखटाया। अंदर से वही बुज़ुर्ग अम्मा और उनकी बेटी बाहर आईं। बेटी की आँखें रात के आँसुओं से अब भी भीगी थीं, पर उनमें आशा की हल्की किरण झिलमिला रही थी। श्रीकांत ने धीरे से कहा — "बहनजी, ये आपकी अमानत है।"

किताबें और लिफ़ाफ़ा उनके हाथों में रख दिया। स्त्री अवाक् रह गई —"बेटा, ये सब तुम्हारे पास कैसे पहुँचा?"

श्रीकांत ने पूरी बात शांति से सुना दी। दोनों की आँखों से आभार के आँसू झर-झर गिरने लगे। अम्मा ने हाथ जोड़ते हुए कहा —"बेटा, आज भी ईमान ज़िंदा है, भगवान तुम्हें सुखी रखे।"

श्रीकांत ने मुस्कुराकर कहा —"माँ, आपकी दुआ ही मेरे लिए सबसे बड़ी कमाई है।"

और बिना कुछ लिए, बिना कुछ कहे लौट पड़े। पीछे से माँ-बेटी की आँखों से आशीर्वाद बरस रहा था, ऐसा आशीर्वाद जो अमूल्य था, जिसे पाने के लिए दुनिया का हर इंसान कुछ भी कर सकता है। दूसरी ओर श्रीकांत की आँखों में आत्मसंतोष का उजास था और दिल में एक ऐसी सुखद अनुभूति थी जिसे शब्दों में बयां कर पाना संभव नहीं था।

कहते हैं—"नेकी कर, दरिया में डाल।" श्रीकांत ने वही किया। इतिहास के अध्यापक ने उस दिन एक नया इतिहास रच दिया — मानवता, ईमान और करुणा का इतिहास।

-xxx-

डॉ. केशव कल्पांत
खुर्जा- बुलंदशहर-उत्तर प्रदेश,
मो. 9917276169

कविता

सत्य की मौत

आपने सुना है क्या?
पृथ्वी लोक में
सत्य मर गया।
झूठ के पांव टिक गए।

क्या कहा?
जी, यह बिल्कुल ठीक है
इस धरा से सत्य
हमेशा के लिए उठ गया
यह देखो सत्य का जनाजा जा रहा है
चार भ्रष्टाचारियों के कंधों पर
झूठ के कफ़न में लिपटा हुआ
सत्य का पार्थिव शरीर जा रहा है
असत्य पीछे से मखाने फेंक रहा है
बार-बार स्वर उभरता है
'राम नाम सत्य है'
'राम नाम सत्य है'

इस शव यात्रा में
झूठ के साथी
अनेक रूपों में चल रहे हैं
भ्रष्टाचारी, बेईमान, ढोंगी, पापी
अपने-अपने नकाबों में
दुनिया को छल रहे हैं
बुराइयाँ छतों और बारजों से
झाँक रही हैं

सत्य बार-बार काँठी से उठना चाहता है
पर असत्य की रस्सियों ने
उसे जकड़कर बाँध रखा है
ये लोग आज सत्य को
हमेशा के लिए जला देंगे,
लेकिन
शमशान में पहुँचकर सब उदास हो गए
शायद शमशान का वैराग्य उत्पन्न हो गया
लो सत्य पुन: जीवित हो गया
सत्य कभी जलता नहीं
सत्य कभी छिपता नहीं
सत्य कभी मरता नहीं
सत्य तो हमेशा
सत्य ही रहता है
झूठ का आवरण
अधिक दिन चलता नहीं
सत्यम् शिवम् सुंदरम्

-xxx-

विनय विक्रम सिंह

नोएडा-उत्तर प्रदेश

मो. 8376099007

गीत

मानव

कर भूमिभाव का आलिंगन,
तज दर्प व्योमजित अभिलाषा।
अनुचर अनुगामी बन तृण के,
उद्दाम उदधि क्यों प्रत्याशा।।
तज जलधि ताल के उद्दीपन,
घन-नाद गर्वमय हुंकृति को।
तुम मानव के कुल कुसुम बनो,
अपनाओ अपनी प्रकृति को।
परपीड़ा दम्भ अधोगति है,
कर अंगीकृत नतशिर भाषा।
कर भूमिभाव का आलिंगन,
तज दर्प व्योमजित अभिलाषा।१।

करुणार्द्र हृदय के भाव-कलश,
जग में सकार के पोषक हैं।
हिंसा अनुरंजित रत कलुषित,
स्वर-कर्म सृष्टि के शोषक हैं।
चेतना पल्लवन स्वर-सज्जित,
ऊर्जस्वित करती हत आशा।
कर भूमिभाव का आलिंगन,
तज दर्प व्योमजित अभिलाषा।२।

उल्लास सौख्य जन-जीव रमे,
उद्देश्य सर्वहितकारी हो।
जग मानवता का शङ्खनाद,
कल्याणसिक्त सञ्चारी हो।
दिग-काल देश नभ विश्व सकल,
हो व्यापित परिमल सुख आशा।
कर भूमिभाव का आलिंगन,
तज दर्प व्योमजित अभिलाषा।३। -xxx-

गीत

आधा जीवन

महुए के कोए के सीने रीते हैं।
आधे मन का आधा जीवन जीते हैं।

गला करगदे से बाँधे, ताबीज कई,
पर अगले दिन की थाली में गीत नहीं।
फतुही ने रेहू से कपड़े फींचे हैं।
महुए के ...

छल से छलती हरियाली की मृत छाया,
हीरा का हीरामन भाँप नहीं पाया।
कथरी से अपने पङ्खों को सीते हैं।
महुए के ...

छिलका-छिलका तन, हर आँसू सोख गया।
पीट डुगडुगी कुड़की करती मिली दया।
यों ही क्या निचुड़े तन कच्ची पीते हैं।
महुए के ...

सूंघ रही परछांईं बादल की बूंदें
छिदही बंडी में आशा के दुख ऊंघें
फिर अषाढ़ में पिछले से दिन बीते हैं
महुए के ....

-xxx-

योगेंद्र कुमार

नोएडा-उत्तरप्रदेश

मो. 9871395282

गीत

डगमगाते कदम

देखता हूँ मानव जीवन की
इस बदलते युग में बढ़ती विषमतायें
अपेक्षाओं की खूंटी पर टंगे
सामाजिक परिवेश की बढ़ती सीमायें
कर्तव्यबोध को बेरहमी से ठुकराकर
नित सिमटते जाते परिवेश में
नए-नए झंझावातों से जूझती अपेक्षाएं
अपने गंतव्य से अनजान
बेलगाम होती जाती कामनायें
त्यागकर सिक्तता, माधुर्य और सरसता
नित कुचली जाती संवेदनायें
स्वकीयता, स्वतंत्रता और नवीनता के
नाम पर बढ़ती उच्छृंखलतायें
शब्दानुशासन भूलती व्यवस्थायें
परस्पर वैमनस्य की गाढ़ी लकीरें खींचकर
नित तार-तार होती मर्यादायें
द्वंद्व में डूबा, चहुँओर पसरा परिदृश्य
सोचने को करता है विवश
किस सभ्यता की ओर बढ़ रहे हैं
वर्तमान के डगमगाते कदम

-xxx-

गीत

छलनामयी अभिलाषा

जीवन पथ पर चलते चलते
जब शशि मुख पर घूँघट डाले
अंचल में प्रदीप्त दीप छिपाए
चेतना तरंगिनी की मृदुल हिलोरें संजोए
वासंती सुवास का माधुर्य महकाए
बड़ी सी काली आँखों से मदिरा छलकाए
मन में प्रणय सिंधु की वडवाग्नि धधकाए
सुकुमारता की सुकुचता दर्शाए
सलज्जता की मोहकता संवारे
कमनीयता की सुष्मित छवि उकेरे
विकल रागिनी की मधुर ध्वनि पसारे
अपनी अनुपमेय छटा बिखेरे
प्रेम के प्रदीप्त मणिदीप से
नर्म सांसों को उष्मित करके
जब मन वीणा को झंकृत करता
जिजीविषा को पुन: उद्वेलित करता
वो अनिंद्य सौंदर्य प्रेम पारावार में
उभरता है कुछ लम्हों के लिए
तो विवेकशून्यता की उस मन:स्थिति में
एक ही पुकार आती है अंतस् से
काश जीवन यहीं ठहर पाता
इसी मधुरिमा को सर्वस्व बना पाता

-xxx-

जयप्रकाश श्रीवास्तव
जबलपुर-मध्य प्रदेश
मो. 7869193927

गीत

(न्यूयार्क मेरी नज़र से)

शहर भी क्या है?

शहर भी क्या है
इक नया ही फ़लसफ़ा है
जिंदगी है इक सफर
या है सफर में जिंदगी
सड़क चलती है यहाँ
या चल रही है जिंदगी
आदमी अक्सर यहाँ
स्वयं से लगता खफ़ा है
सौ स्वप्न आँखों में
लिये जीते हैं लोग
बस दर्द से उधड़े
बदन सीते हैं लोग
अपनापन करुणा
संवेदना भी बेजुबाँ है
समंदर के बीच
रखकर शांति की मूरत
आधुनिक परिवेश
रचते प्रगति की सूरत
उन्नति के शिखर
टूटे स्मृति में हादसा है

-xxx-

गीत

पूरब का सूरज धरती पर

हम जागे हैं, तभी जगा है
पूरब का सूरज धरती पर।

हँसिया से काटा तम सारा
झाड़ू से झाड़ा ओसारा
मेंड़ फलाँगी हिरना बनके
तब जाके फैला उजियारा
सूरज अपना बना सगा है
सिर रख सोता है छाती पर।

भूख पेट को रही बजाती
रोटी सबको खूब नचाती
धूप पसीना रोज निचोड़े
और शाम की ठकुरसुहाती
श्रम दो कौड़ी मोल लगा है
फूल खिलाकर भी परती पर।

राजपथों की कठिन वीथियाँ
फाइल में दब गईं नीतियाँ
अब भी सत्ता के चंगुल में
बँधुआ बन जी रहीं पीढ़ियाँ
छल फरेब सब ओर दगा है
जश्न हुए हैं बरबादी पर।

-xxx-

निर्देश निधि
बुलंदशहर-उत्तर प्रदेश

कविता

परिवर्तन

मैने देखे हैं
गाँव की धरती पर खड़े
परिवर्तन के बड़े-बड़े ढूह

देखे हैं बदलते हुए शीशे के मकानों में
गाँव के झोपड़ियों वाले घर
लुभाती थी मुझे
मेरे गाँव की बदलती काया
करते थे चकित उसके
बदलते लिबास

बड़े प्यारे लगे थे
गाँव की हथेलियों पर खिलते
वे परिवर्तन के फूल
सब परिवर्तन ठीक थे पर
देखे मैंने
घरों के खुले दरवाजे बंद होते
बंद दरवाजों में कैद होता अल्हड़पन
देखा मरणासन्न अपनापन
देखी चौपालों की विलुप्त होती देहें

और देखी मैने
विकास की गोद में
दम तोड़ती
शुद्ध घी सी गँवाई आत्मा
कराहते आपसी विश्वास,
सहमते सामंजस्य देखे
और देखे
ढेर होते प्रेम

-xxx-

कविता

फर्क

सोचती हूँ
क्या अब भी
कुछ देखना शेष रहा

अब देखती हूँ मैं
बैलों वाले हल की विकल्प
खेती के व्यापार में लगी
बड़ी - बड़ी आधुनिक मशीनों को
निर्ममता से धरती की खाल उधेड़ते हुए
ऐसे
जैसे उधेड़ दे कोई कसाई
किसी जिंदा मृगछोने की देह पर चढ़ी
नरम चमड़ी

कभी देखा था मैंने
खेती-किसानी करते
बैलों वाले हल को भी
धीरे से धरती की हथेली कुरेदते हुए,
ऐसे
जैसे साँस रोके निकालती है माँ,
महीन सुई की नोक से हौले-हौले
अपने इकलौते मुन्ने के पाँव में
चुभा निर्मम काँटा

-xxx-

संगीता वर्मा
राजेंद्र नगर, गाजियाबाद-उत्तर प्रदेश
मो. 9873563277

गीत

शातिर जमाना

चले चाल टेढी जो शतरंज वाली,
उसी शख़्स की भर रही जेब खाली ,
अजब सा ज़माना गज़ब कर रहा है ,
यहां जो है शातिर वही तर रहा है,
भरी खीर से उस पतित की है थाली,
चले चाल टेढी जो शतरंज वाली।

कि चलने लगी है फिज़ा बहकी बहकी,
धुंआ हर तरफ है अगन दहकी दहकी,
शराफत की जिसने है इज्जत उछाली,
मुखौटे के पीछे छिपी शक्ल जाली
चले चाल टेढी जो शतरंज वाली,
उन्ही शख़्स की भर रही जेब खाली।

-xxx-

गीत

मन

मन यदि काबू रहे तो सुख में बीते हर अवस्था,
है अगर संकल्प दृढ़ तो बदल जाती हैं व्यवस्था,

मानसिक बल को बढ़ाकर कामना पूर्ण करो,
मौन सरिता में नहा कर ज्ञान अंजुलि भरो,
वेदनाएं सबके मन में , है सभी की एक कथा,
है अगर संकल्प दृढ़ तो, बदल जाती हैं व्यवस्था

रूप पतझड़ का भी ढलता, रितु बसंती में बदलता,
पुष्पमय सब डालियों पर, भंवरा फूलों पर मचलता,
वाटिका भी कह रही है, मौसमी सारी व्यथा,
है अगर संकल्प दृढ़ तो बदल जाती है व्यवस्था।

-xxx-

ऋषभ शुक्ला
शाहजहांपुर-उत्तर प्रदेश
मो. 8299455767

कविता

कुछ करना है

हर शाम उदासी की मूरत,
बिन भाव पत्थरों सी सूरत।
तिनकों में बिखर रही आशा,
बदली जीवन की परिभाषा।

नीरसता में रस भरना है,
कुछ हमको ऐसा करना है।
जो मन के तार बजा जाए,
हर देहरी द्वार सजा जाए।

जिसमें निस्वार्थ समर्पण हो,
मन जिसका उजला दर्पण हो।
बन सको तो वो इंसान बनो,
मानवता का अभिमान बनो।

हैप्पी दिवाली

इमारतों से
उतर गई हैं झालरें
दिये समेटे जा चुके हैं
मुंडेरों से
बिगड़ चुकी हैं
रंगोलियां
अब...
चल पड़ी हैं
गाड़ियाँ और रेलगाड़ियाँ
फिर से
बड़े शहरों की ओर
पर,
जाने से पहले...
बच्चों ने सहेज ली हैं
बची हुई फुलझड़ियां
युवाओं ने सहेजे
अपने सुंदर चित्र
और बुजुर्गों ने...?
बुजुर्गों ने सहेजा
एक साल का इंतज़ार
कि शायद फिर मिल सके
पूरा परिवार
एक ही आंगन में
अगले साल
और कह सके
"हैप्पी दिवाली"

-xxx-

डॉ. ज्ञानेश दत्त हरित
वसुंधरा, गाज़ियाबाद-उत्तर प्रदेश
मो. 983728072

गीत

मैं उन गीतों को लिखता हूँ

मैं उन गीतों को लिखता हूँ
जिन गीतों को धरती गाए।
मेरा दोष न इसमें कोई
तुमको अगर पसंद न आए।

मन चातक व्याकुल रहता है
दो बूंदें मिलते रह जातीं
अमा जमीं बैठी घर आंगन
पूनम आकाशी रह जाती।
दोनों हाथों ख़ून पसीना,
मैं हरदम देता रहता हूँ
फिर भी तृषित कंठ की मेरे
प्यास सदा प्यासी रह जाती।
मैं उन घूंटों को पीता हूँ
जो मेरे हिस्से में आए।
मेरा दोष न इसमें कोई
तुमको अगर पसंद न आए।

मेरी गलियां ऊंची नीची
आंख फेर जाता दिनमाली।
मैं उस युग का आराधक हूँ
जिसकी पेशानी है काली।
मौसम तो हरबार बदल कर
अपना काम किए जाता है।
पर शापित खलिहान में मेरा,
सदा रहा खाली का खाली।
मैं उन सांसों को जीता हूँ
मृत्यु हाथ से जो बच जाए।
मेरा दोष न इसमें कोई
तुमको अगर पसंद न आए।

हर पल इन बेबस आंखों में
सावन आए ही रहते हैं
मधुमासी अधरों पर हरदम
पतझर छाए ही रहते हैं।
विरह -अग्नि में जलता सारा
विश्व दिखाई देता मुझको।
यही सोचकर गीत मिलन के
अब तो अनगाए रहते हैं।
मैं मंदिर के द्वार खोलता,
जिस दिन भी छुट्टी मिल जाए।
मेरा दोष न इसमें कोई
तुमको अगर पसंद न आए।।

-xxx-

वंदना कुँअर रायजादा
वैशाली, गाजियाबाद-उत्तर प्रदेश
मो. 9582502722

गीत

जिन द्वारों पर हमने बाँधे सौ-सौ बंदनवार

जिन द्वारों पर हमने बाँधे सौ-सौ बन्दनवार
आज उन्हीं पर सारे सुख हारे हैं आख़िरकार

जहाँ सजाये मात पिता ने आशा दीप नये
तुम्हीं बुझा कर उन दीपों को कोसों दूर गये
उन दोनों के नैना हारे देखो पंथ निहार

रही अल्पना बाट जोहती पर तुम न आये
चौखट पर बैठी माँ का मन हरपल घबराये
दिल से देती रही दुआयें और आशीष हजार

रख न पाये तुम मन से राखी का मान कभी
रही पिरोती रिश्तों के मनकों को बहना भी
रहा टूटता धागा माला का भी तो हर बार

पिता सोचते थे भविष्य हो तुम उनके जीवन के
चुप्पी की चादर ओढ़े तुम रहे सदा ही मन के
उनके श्रम का बचा हुआ है तुम पर अभी उधार

धागे मन्नत के बाँधे थे पुत्र रतन पाने को
वही तमाशा दिखा रहा है आज जमाने को
बेच रहा है इज़्ज़त सारी देखो सरे बजार

-xxx-

डॉ. पूनम माटिया
दिलशाद गार्डन, दिल्ली
मो. 9312624097

ग़ज़ल

(1)

उफ़! ये कितना बदल गयी हूँ मैं
रंगे-दुनिया में ढल गयी हूँ मैं

अब कहाँ शोखियाँ वो बचपन कीं
कितना आगे निकल गयी हूँ मैं

क्या यही मैं थी, क्या वही मैं हूँ
किसके पैकर में ढल गयी हूँ मैं

दर्द ज़ाहिर नहीं किया करती
वाक़ई अब संभल गयी हूँ मैं

अब तमन्ना नहीं क़सीदों की
ख़ुद ही ख़ुद से बहल गयी हूँ मैं

मैं तो 'पूनम' हूँ, चाँदनी शब हूँ
फिर भी क्यों उसको खल गयी हूँ मैं

-xxx-

(2)

मेरे ख़्वाबों से भला आपका रिश्ता क्या है
सुबह उठती हूँ तो तन-मन में महकता क्या है

नाम सुनकर तो ख़ुमारी-सी यक़ीनन आयी
इश्क़ मुझको भी बता दे कोई होता क्या है

मैं जो रो दूँगी तो फूटेंगे कई ज्वालामुखि
मेरी मुस्कान पे नादान तू हँसता क्या है

तुझको रूदाद समझनी है अगर बारिश की
देख पलकों को मिरी अर्श को तकता क्या है

एक सैलाब-सा आ जाता है 'पूनम' अक्सर
मेरी आँखों का तिरी याद से रिश्ता क्या है

-xxx-

प्रवीण पारीक 'अंशु'
ऐलनाबाद, जिला सिरसा-हरियाणा
मो. 9813561237

ग़ज़ल

(1)

ग़मों के घूँट भर लेते, समुंदर हो गए होते
अगर पीते ज़हर हँसकर, तो शंकर हो गए होते
मुसीबत एक जाती है तो पीछे दूसरी आती
कभी तो चैन के दो पल मयस्सर हो गए होते
भला हो आँसुओं का जो ग़मों का बोझ ढोते हैं
नहीं जो खुल के हम रोते, तो पत्थर हो गए होते
ढिंढोरा पीटते ही रह गए ईमानदारी का
अगर कुछ घूस दी होती, तो अफ़सर हो गए होते
खुदा का शुक्र है, तेरा सहारा मिल गया हमको
वगरना टूटते ऐसे कि खँडहर हो गए होते
अगर हम छोड़ देते वक्त रहते दुनियादारी को
तो सच कहते हैं हम दुनिया से ऊपर हो गये होते
तुम्हें डर टूटने का था, तो आइना बने ही क्यों
अरे, इससे तो अच्छा था कि पत्थर हो गए होते
अगर ईमानदारी से निभाते फ़र्ज़ सब अपना
तो अब तक देश के हालात बेहतर हो गए होते
नहीं बेची कलम अपनी, नहीं बेचा ज़मीर अपना
किसी के चाटते तलवे, तो शायर हो गए होते

-xxx-

(2)

आए थे तो, मिलकर जाते कम से कम
पल दो पल का साथ निभाते कम से कम
शर्मो हया ने लब सी डाले थे, माना
आँखों से ही कुछ कह जाते कम से कम
और नहीं कुछ लाए मेरी विदाई पर
आँखों में आँसू भर लाते कम से कम
मिलने को नहीं आए, कोई बात नहीं
ख़्वाबों में ही तुम आ जाते कम से कम
बनने को भगवान चले हैं जो कुछ लोग
पहले इंसां तो बन जाते कम से कम
माना, सरकारें गूंगी और बहरी हैं
तुम अपनी आवाज़ उठाते कम से कम
ऐसी भी क्या जल्दी थी घर जाने की
शेर हमारा सुनकर जाते कम से कम

-xxx-

प्रगीत कुँअर
ऑस्ट्रेलिया

ग़ज़ल

(1)

दर्द का जब शुरू सिलसिला हो गया
दर्द ही अब हमारी दवा हो गया

जब अहम् दिल में जाकर सुरा हो गया
आदमी को अलग ही नशा हो गया

राजनीति में मतलब न निकला अगर
जो था कल तक भला अब बुरा हो गया

देखना था सही अपना चेहरा मुझे
तब मेरा दिल मेरा आईना हो गया

आत्मा ने नए वस्त्र धारण किए
आदमी फिर से वो ही नया हो गया

वो क्षितिज पर पहुँच कर रुका थक के जब
आसमाँ ही वहाँ पर धरा हो गया

मोड़ आया कहाँ से ये ऐसा "प्रगीत"
उनका हमसे अलग रास्ता हो गया

-xxx-

(2)

फिर पुरानी सी वो दुनिया भेज दे
फिर वही तू वक़्त गुजरा भेज दे

एक नई ताज़ा सी सुबहा भेज दे
एक दिन तो कोई उजला भेज दे

टूटकर तुझसे जो बिखरा भेज दे
मेरे दिल का वो ही हिस्सा भेज दे

चीख लूँ तो दिल ये हल्का हो सके
मेरे दिल में भी तू गुस्सा भेज दे

करके वादा फिर नहीं आया है तू
फिर नया तू एक क़िस्सा भेज दे

-xxx-

नवीन माथुर पंचोली

अमझेरा, धार-मध्य प्रदेश

मो. 98993119724

ग़ज़ल

(1)

बात नहीं हैरानी की।
अक़्सर जीत जवानी की।

सीधे दिखने वालों की,
आदत है शैतानी की।

जब तक बचपन ठहरा है,
फ़ितरत है नादानी की।

दिल का हर जज़्बा अपना,
ताकत है आसानी की।

चिंता जतला देती है,
सलवट इक पेशानी की।

रखती हैं थोथे मतलब,
रस्में सब बेमानी की।

(2)

जब कभी भी लगाम दूँगा तुझे।
चाल अपनी तमाम दूँगा तुझे।

मैं लड़ूँगा यहाँ अर्जुन की तरह,
जीत का एहतराम दूँगा तुझे।

देखकर दिल ख़ुशी से झूम उठे,
कोई ऐसा ईनाम दूँगा तुझे।

जब मिलेगा कहीं सफ़र में मुझे,
पास रुककर सलाम दूँगा तुझे।

और पहले कभी मिला न सुना,
एक ऐसा पयाम दूँगा तुझे।

(3)

आसमाँ को झुकाना चाहते हैं।
इल्म अपना जताना चाहते हैं।

धूप ,पानी, हवा से दूर जाकर,
चाँद पर घर बनाना चाहते हैं।

इस जहाँ से अलग और अपनी,
एक दुनियाँ बसाना चाहते हैं।

हो इरादे सभी पूरे उन्हीं के,
बात अपनी मनाना चाहते हैं।

ओढ़कर भाव नकली, चेहरे पर,
रौब अपना जमाना चाहते हैं।

-xxx-

असलम राशिद

गुना-मध्य प्रदेश

मो. 8989671786

ग़ज़ल

(1)

उनकी बातें उनका साया रौशनी
रौशनी हैं, वो सरापा रौशनी

जल रहा है जिस्म उसके हिज्र में
हो रही है बेतहाशा रौशनी

इश्क़ ही से बाँधना तुम इश्क़ को
रौशनी से ही उठाना रौशनी

आईने में झाँक कर कहते हैं वो
रौशनी का इस्तियारा रौशनी

इश्क़ का नेमुल बदल बस इश्क़ है
रौशनी का ख़ानवादा रौशनी

देखता हूँ बन्द आँखों से उन्हें
हो रही है ग़ायबाना रौशनी

-xxx-

(2)

रफ़्तार आँसुओं की रवानी से खींच लूँ
मैं चाहता हूँ दर्द कहानी से खींच लूँ

अच्छा अमल समझ के जो दरिया में डाल दीं
दिल करता है वो नेकियाँ पानी से खींच लूँ

क्यों देखे कोई आ के मेरे दिल की ख़स्तगी
इक दायरा मैं तल्ख़ बयानी से खींच लूँ

सूरज से खींच लूँ मैं उजालों के लम्स को
ख़ुश्बू का अर्क़ रात की रानी से खींच लूँ

मैं चाहता हूँ ज़ख़्म ये ताज़ा रहे सदा
सो तेरा ज़िक्र अहद-ए-जवानी से खींच लूँ

बिछड़े थे जिसकी वजह से सीता से राम जी
मैं उस हिरन को राम कहानी से खींच लूँ

-xxx-

डॉ. ब्रजलता शर्मा
नोएडा-उत्तर प्रदेश
मो. 8826440688

ग़ज़ल

तेरी झील सी गहरी आँखें, चुप रहकर भी बोल गईं,
खामोशी की लहरों में, कितनी बातें डोल गईं।

उनकी निगाहें जैसे कोई अहद पुराना राज,
देखते-देखते सब हदें भी खोल गईं।

सांसों का आलम था रुक-रुक जाने का,
वो झुकीं ज़रा, तो सदियाँ अनजान तोल गईं।

हर बार लगा, जैसे कोई नशा उतर आया,
या आँखें किसी दास्तां की ताबीर बोल गईं।

हिज्र की रातों में भी वो तस्वीर चमक उठी,
अब वो यादें भी आंखो में ठहर गईं।

अब दिल में बस इतना अरमान रहा बाक़ी,
वो झील सी आँखें फिर इक पल खोल गईं।

-xxx-

प्रो. जी. गोपीनाथन
महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा –महाराष्ट्र
मो. 9747028623

पुस्तक समीक्षा

भारत की भाषाएँ एवं भाषिक एकता तथा हिन्दी

भारत में एक ओर सांस्कृतिक वैविध्य है तो दूसरी ओर सांस्कृतिक एकता भी है। प्रो. महावीर सरन जैन के "भारत की भाषाएँ एवं भाषिक एकता तथा हिन्दी" नामक ग्रंथ में एक ओर भारत के चार भाषा परिवारों की 116 भाषाओं की विवेचना प्रस्तुत है तो दूसरी ओर भारत की भाषिक एकता की अवधारणा के सूत्रों को खोजने का स्तुत्य प्रयत्न है तथा इसी ग्रंथ में हिन्दी के वैश्विक महत्व को प्रामाणिक आँकड़ों के साथ रेखांकित किया गया है।

इस ग्रंथ में भारतीय भाषाविज्ञान की बहुत सी भ्रांतियों को दूर करने की पहल की गई है तथा मौलिक, प्रामाणिक एवं अकाट्य मान्यताएँ एवं स्थापनाएँ प्रस्थापित हैं। लेखक द्वारा प्रस्थापित मान्यताओं एवं स्थापनाओं में से निम्न अधिक उल्लेखनीय हैं –

इसके पहले के भाषाविदों की यह मान्यता रही है कि भारत के उत्तर में आर्य परिवार की तथा भारत के दक्षिण में द्रविड़ परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं। प्रोफेसर जैन ने इस मान्यता का खण्डन किया है।

भारत में प्रत्येक युग में कोई न कोई सम्पर्क भाषा रही है। इस कारण तथा भारत के विभिन्न भागों में सांस्कृतिक आदान प्रदान होते रहने के कारण भारत के विभिन्न भाषा परिवारों की भाषाओं में भी परस्पर भाषिक तत्त्वों का आदान-प्रदान होता रहा है।

भारतीय भाषाओं के अभी तक जो अध्ययन सम्पन्न हुए हैं, वे लिखित सामग्री के आधार पर हुए हैं। लिखित सामग्री के आधार पर वर्तमान में बोली जानेवाली भाषाओं के सम्बंध में निष्कर्ष निकालना अवैज्ञानिक एवं अतार्किक है।

आज भारत में जितनी भाषिक विविधताएँ मिलती हैं उनकी अपेक्षा विगत युगों में ये विविधताएँ एवं भिन्नताएँ और अधिक रही होंगी।

भारतीय भाषाओं के अध्ययन के लिए नए प्रतिमानों एवं नई दृष्टि की आवश्यकता है। भारत में बोली जानेवाली भिन्न भाषा परिवारों की भाषाओं के समान क्रोड के वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित अध्ययन की आवश्यकता असंदिग्ध है। किसी भी विषय का भेद दृष्टि से अध्ययन करने पर हमें अन्तर, असमानताएँ एवं भिन्नताएँ अधिक दिखाई देती हैं उसी विषय का अभेद दृष्टि से अध्ययन करने पर हमें एकताएँ एवं समानताएँ अधिक नज़र आती हैं।

विद्वानों ने भारत की भाषाओं के भेदों की जाँच -पड़ताल तो बहुत की है; बाल की खाल बहुत निकाली है किन्तु इस ग्रंथ में विद्वानों के विचार के लिए यह विचार-सूत्र मंडित है जिससे प्रेरित होकर वे भारतीय भाषाओं में विद्यमान सादृश्य के सूत्रों की खोज के काम में प्रवृत्त हों सकें और जिसके परिणाम स्वरूप भारत की भाषिक एकता की अवधारणा और अधिक स्पष्ट एवं उजागर हो सके।

ग्रंथ के दूसरे खण्ड में हिन्दी की अन्तर्क्षेत्रीय, अन्तर्देशीय एवं अन्तरराष्ट्रीय भूमिकाओं की मीमांसा की गई है। प्रस्तुत ग्रंथ, भारतीय भाषाओं की भाषिक एकता एवं हिन्दी भाषा से सम्बंधित समस्त पक्षों एवं आयामों पर, एक साधक की शोध निष्ठा और वैचारिक चेतना का अप्रतिम मानदंड है।

पुस्तक: भारत की भाषाएं एवं भाषिक एकता तथा हिंदी
लेखक: प्रो. महावीर सरन जैन
प्रकाशन: लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज
ISBN:9789352210855

-xxx-

डॉ. रजनी गुप्ता
रामगढ़-झारखंड

पुस्तक समीक्षा

आस्था, आशा, प्यार और विश्वास जगाती कविताएं

डॉ शारदा प्रसाद, साहित्य के क्षेत्र में एक जाना-पहचाना नाम है। उनके 'काव्य संग्रह' पर कुछ लिख पाना मेरे सामर्थ्य से बाहर है, बस एक प्रयास है। उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

'मौन के स्वर' उनका पहला काव्य संग्रह है, इसमें कुल 70 चुनिंदा कविताएं हैं। संकलन अपने शीर्षक को अर्थ देते हुए खामोशी से सब कुछ बयां कर देता है। शीर्षक अपने आप में अनंत विस्तार लिए हुए है। कविताओं से गुजरते हुए मेरी कल्पनाओं में विस्तृत शांत आकाश में शांत उड़ता एक पंछी दृष्टिगोचर होता है तो कभी समंदर की लहरों के साथ तालमेल बैठाता, आगे बढ़ता कोई समुद्री जहाज हो। जैसे आकाश की कोई सीमा नहीं समुद्र की भी सीमा और गहराई की थाह लगाना मुश्किल है वैसे ही 'मौन का स्वर' में जिन कविताओं को संकलित किया गया है उन कविताओं में से कौन बेहतर, कौन उससे बेहतर, कौन-सी कविता कितना गहन अर्थ समेटे है, यह अनुमान करना कठिन है।

जीवन के गहरे अनुभवों को सरलता- सहजता से मोतियों की तरह पिरोते हुए उन्होंने इस काव्य-माला का सृजन किया है। इस काव्य संग्रह की शुरुआत "मां शारदे" कविता से की गई है जो कवयित्री की बौद्धिक समृद्धि का परिचायक है।

आज्ञान का कुहासा छाया है चारों ओर
कृपा-दृष्टि से करो मां नित-नित सुनहरी भोर।

निज माटी के गौरव और देश भक्ति से ओत-प्रोत कविता है "देश हमारा" .. पूरी वसुधा हमारा कुटुंब है...आज के इस वैमनस्यता के समय में इसे हम सभी को फिर याद कराते हुए कवयित्री लिखती हैं-

वसुधैव कुटुंबकम का दर्शन जिसका,
हृदय में मधुर प्रेम-संचार
धरती से अंबर तक बहती
मानो रस की अभिनव-धार

प्रकृति से प्रेम करना हम भूल रहें हैं और इसका नतीजा भी भुगत रहे हैं..ऐसे में संकलन की कविताएं कवयित्री के प्रकृति-प्रेम से परिपूर्ण हृदय से परिचय कराती हैं और प्रकृति प्रेम का संदेश देती है.."वंसत और सावन" पर कई भावपूर्ण कविताएं हैं, बंसत जैसे उनमे समाहित हो जाता है, वह लिखती हैं ,

जब पीले सरसों फुले
मन मस्त पवन संग डोले
तो समझो बसंत आ गया

कवयित्री का विकलांगों (दिव्यांगों) के प्रति भी एक असीम स्नेह है। शारीरिक विकलांगता की मार्मिक प्रस्तुति एवं आत्मबल को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ समाज की मानसिक विकलांगता पर कुठाराघात करती है यह पंक्तियां -विकलांगता अभिशाप नहीं

वरदान इसे कर जाना है ,
काने-कूबड़े-बौने समाज में
अमलतास-सा खिल जाना है

प्रेम के कोमल एहसास पर भी संकलन में कई कविताएं हैं। प्रेम से उपजती हैं मधुर स्मृतियां, उन्होंने स्मृतियों को भी मिठास के साथ सहेजा है और उस पर कई कविताएं इस संकलन में शामिल की हैं।

कवयित्री ऐतिहासिक स्थानों एवं उनके महत्व से भी भलीभांति वाकिफ हैं और गहरे जुड़ी हुई हैं ,'काला पानी' कविता की ये पंक्तियां देखिए-

अंडमान की धरती
यह पावन तीर्थ है वीरों की
दुर्दमनीय कष्ट सहे जिनने
उन वीर सपूतों हीरो की

"जब मौन बोलता है' कविता में कवयित्री मौन की सशक्त अभिव्यक्ति पर प्रकाश डालते हुए कहती हैं-

"मौन जब बोलता है
पत्थर भी पिघल जता है
खामोश धरा होती है
अंबर भी लरज जाता है "

जीवन की विसंगतियों, विडंबनाओं से, चारों तरफ फैले झूठ से भी वह अंजान नहीं है, ये मार्मिक पंक्तियां देखिए-

"सत्य की खोज में चल रही थी/ मगर दूर... बहुत दूर...जाने के बाद मिला क्या..?
एक विषाक्त दमघोंटू वातावरण, हर तरफ धुआं ही धुंआ
एक ओर जल रही थी सत्य की चिता..."

चुनाव गणतंत्र/ लोकतंत्र का उत्सव है, एक अहम् प्रक्रिया है। विकास के रास्ते पर देश को आगे बढ़ाने का एक सशक्त माध्यम है, चुनाव की महत्ता पर प्रकाश डालती, जनता को आगाह करती उनकी कविता है, 'बज गया बिगुल चुनाव का'

"क्षणिक लाभ से हमको बचना
प्रजातंत्र का सच्चा गहना
नेता चुनें हम ठोंक-बजाकर
मतदान जरुर करें हम जाकर"

अभिव्यक्ति हमेशा सहज नहीं होती ,कवि को पीड़ा से गुजरना पड़ता है....उनके शब्दों में...

"अभिव्यक्ति की पीड़ा"
शब्द मेरे साथ नहीं देते हैं
शब्द तरंगे लेते हैं
हृदय तक आते-आते
विलुप्त हो जाते हैं"

डॉ. शारदा प्रसाद एक जीवन-मुखी, आशावादी एवं सकारात्मक सोच की धनी कवियत्री हैं। कवयित्री ने अपनी लेखनी से जीवन के सभी पहलुओं को छुआ है जो सभी वर्गो के पाठकों के मन-मस्तिष्क को छूने में और मन की गहराइयों तक उतरने में कामयाब होगीं एवं पाठको में नूतन आशा, जीवन के प्रति आस्था, विश्वास, प्यार और उम्मीद का संचार करती हैं। वह एक शिक्षाविद् हैं ..जो हमेशा जीने की बात करती हैं, अंधेरे में भी उम्मीद की रोशनी दिखाती हैं, विपरीत परिस्थितियों में भी मनोबल बढ़ाती हैं।

पुस्तक का नाम : मौन के स्वर (काव्य संग्रह)
कवयित्री: डॉ0 शारदा प्रसाद
प्रकाशन - किताब राइटिंग पब्लिकेशन, मुम्बई।
संस्करण 2023 मूल्य—199

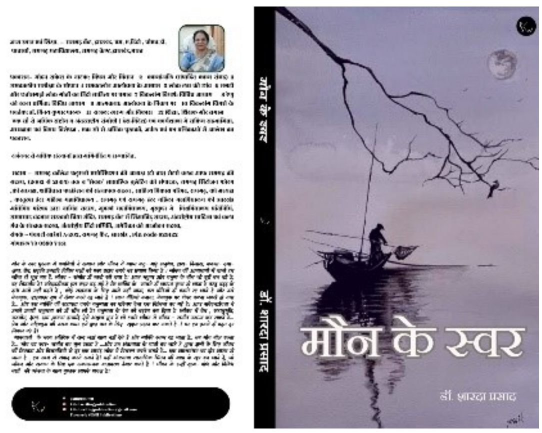

-xxx-

मधु वार्ष्णेय
बुलंदशहर-उत्तर प्रदेश
मो. 9410615755

पत्रिका समीक्षा

साहित्यिक पत्रिका 'बुलन्दप्रभा' का 'डॉ.अश्वघोष श्रद्धांजलि विशेषांक'

'बुलन्दप्रभा' हिंदी साहित्यिक पत्रिका का यह नवीनतम अंक, स्मृति शेष डॉ. अश्वघोष जी को समर्पित एक श्रद्धांजलि विशेषांक, साहित्य जगत के लिए एक महत्त्वपूर्ण और भावपूर्ण दस्तावेज़ है। आकर्षक कवर पृष्ठ में डॉ अश्वघोष जी की कविता की पंक्तियों में उनकी अन्तश्चेतना की अनुगूंज सुनाई देती है।

अभी-अभी मैंने
धरती को लौटा दी है धरती
आकाश को आकाश
लौटा दिया जल को जल
वायु को वायु
शेष बची अग्नि
थोड़ी देर में
इस पर लिटाएंगे मुझे
मेरे बच्चे और
सौंप देंगे अग्नि को अग्नि!

अतिथि संपादक मुकेश निर्विकार के कुशल संपादन में, यह अंक डॉ. अश्वघोष के समग्र जीवन वृत्त और विशाल साहित्यिक अवदान को जिस गहराई और सम्मान के साथ प्रस्तुत करता है, वह अत्यंत प्रशंसनीय है। अतिथि संपादक की कलम 'कहां खो गए यादें बोकर' विरह वेदना की चरम अभिव्यक्ति है। आपने डॉ. अश्वघोष के जीवन के निजी पहलुओं, उनसे जुड़ी छोटी बड़ी बातों को और उनके साहित्यिक योगदान को बड़ी शिद्दत से प्रस्तुत किया है। मुकेश निर्विकार जी ने इस विशेषांक के संपादन में न केवल विषय की गरिमा बनाए रखी है, बल्कि इसे सुंदर और सारगर्भित भी बनाया है। संपादन में एक संतुलित दृष्टि परिलक्षित होती है। ख्यातिलब्ध साहित्यकारों, मित्रों और परिजनों के आलेखों को एक सूत्र में पिरोकर, डॉ. अश्वघोष जी के बहुआयामी व्यक्तित्व को पाठकों के समक्ष सफलतापूर्वक रखा गया है। यह अंक उनके प्रति एक सच्ची और साहित्यिक श्रद्धांजलि है, जो संपादन की गहन संवेदनशीलता और परिश्रम को दर्शाता है।

डॉ. अश्वघोष, जो मूलतः कविता को मुक्ति मानते थे, अम्मा का खत/गौरैया का घर खोया है/गंध गायब है गुलाबों से/ अदृश्य का यथार्थ और भी कितनी ही कालजयी रचनाओं के प्रणेता थे। मुकेश निर्विकार जी ने पत्रिका में अश्वघोष जी के कृतित्व को संकलित करने के साथ ही उनके हस्तलिखित गीत कविता और ग़ज़लों की लोकप्रियता और सामाजिक प्रासंगिकता को भी भली भांति रेखांकित किया है। डॉ. अश्वघोष ने अपने नवगीत-संग्रह तथा ग़ज़ल-संग्रह में जीवन की विसंगतियों को जिस मार्मिकता से उकेरा था, उसकी झलक इस अंक के आलेखों में मिलती है।

यह विशेषांक नए रचनाकारों के लिए प्रेरणास्रोत के रूप में डॉ. अश्वघोष जी की भूमिका को भी स्थापित करता है, उन्हें कविता और ग़ज़ल के क्षेत्र में एक प्रकाश-स्तम्भ की भाँति प्रस्तुत करता है। डॉ अश्वघोष एक जनवादी कवि, गजलकार गीतकार आलोचक समीक्षक भी थे उनकी गजलों में वैचारिकी, संवेदनशीलता को देखकर उनकी काव्यक्षमता और युगबोध का संज्ञान होता है। इस अंतस चेतना के कवि की पुकार को डॉ.अनूप सिंह जी अपनी सपाट बयानी में बड़ी शिद्दत से व्याख्यायित करते हैं, "संभवत उनके हृदय में भारतीय संस्कृति वास करती थी तभी तो उनके गीतों में उनका स्वर-घोष अनुनाद स्पष्ट सुनाई देता है अपनी मिट्टी की सौंधी गंध लिए शब्द नई ऊर्जा देते हैं। उनमें जीवन की सार्थक व्यंजना सुनाई देती है"।

सुविख्यात बाल साहित्यकार दिविक रमेश जी, डॉ धनंजय सिंह, डॉ बुद्धिनाथ मिश्र जी ने अश्व घोष जी के साथ बिताई स्मृतियों को अपनी लेखनी से संवारा है। जहां नवगीतकार जगदीश पंकज जी पचास वर्ष पूर्व उनके साथ बिताई खुर्जा की स्मृतियों को साझा करते हैं। वहीं पढ़ते हुए आलोक यात्री जी की कलम कई बार भावुक कर जाती है।

पूर्व जिलाधिकारी बुलंदशहर डॉ रविंद्र कुमार सिंह, सुप्रसिद्ध साहित्यकार रमेश प्रसून, मनुस्वामी, वीरेंद्र आजम, 'विदेह 'अरविंद कुमार और नेमपाल प्रजापति, कहानीकार निर्देश निधि, कथाकार सुधा गोयल, विज्ञान व्रत, इसहाक अली सुंदर, वरिष्ठ कवि देवेंद्र देव, अनामिका सिंह, डॉ. ओ पी सिंह, हरिराम समीप, कुंतेश दहलान आदि साहित्य के अनेकानेक दिग्गज हस्ताक्षरों ने अपनी कलम से इस अंक में अपनी संवेदनात्मक भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। डॉ. अश्वघोष के सुपुत्र आशीष वशिष्ठ व राहुल वशिष्ठ कहते हैं कि साहित्य उनके लिए सर्वोपरि था। डॉ नामवर सिंह, डॉ रामदरश मिश्र अश्व घोष की गज़लों पर अपना अभिमत रखते हैं। रोहित कौशिक डॉ अश्व घोष से अपना साहित्यिक वार्तालाप साझा करते हैं और अंत में स्मृति शेष श्रीमती पुष्पा गोयल के लिए डॉ रमेश प्रसून जी की विरह वेदना मर्माहत करती है।

तुमने दर्द दिया है जो भी, हम हंस कर चुप सह लेंगे /
घट जाएगा क्या आंखों का, कुछ आंसू यदि बह लेंगे।

स्वयं को दिलासा देती उनकी पंक्तियां ..जीवन के कटु सत्य को उजागर करती हैं।

जीवन, जीव, जगत का पुनि पुनि जन्म हुआ या मरण हुआ/
मायामोहित संबंधों का छूट-छूट पुनि वरण हुआ/

बुलन्दप्रभा' का यह 'डॉ. अश्वघोष श्रद्धांजलि विशेषांक' न केवल एक महान साहित्यकार को भावभीनी विदाई है, बल्कि हिंदी साहित्य की एक अमूल्य धरोहर भी है। आध्यात्मिकता की चरम अभिव्यक्ति को उनके अंतिम कविता संग्रह "अदृश्य का यथार्थ" में अनंत यात्रा गमन को परिभाषित करती पंक्तियां मर्माहत करती हैं।

बहुत देखे
जिंदगी के खेल तमाशे
बहुत देखे सुख-दुख
झूठ सच, ऊंच-नीच देखी बहुत
बहुत देखे अंधेरे उजाले
अब कुछ दिनों के लिए
जाना चाहता हूँजिंदगी के बाहर
यह जानने के लिए कि
वहां कौन से हैं अजूबे
जिन्हें देखना है मुझे मरने के बाद।

डॉ अश्वघोष जी के विपुल साहित्य को सहेजकर मुकेश निर्विकार जी ने अतिथि संपादन के प्रयास को सफलता के उस शिखर पर स्थापित किया है जहाँ स्मृति, सम्मान और साहित्य का सुंदर संगम देखने को मिलता है। पत्रिका और संपादक मंडल, सभी सराहना के पात्र हैं। ज्ञात हो कि विगत 15 वर्षों से बुलंद प्रभा, विचार एवं साहित्य के क्षेत्र में नव चेतना का संवाहक बनकर उभरी है और आज भी सभी के सहयोग से अबाध गति से निरंतर आगे बढ़ रही है। मैं तहे-दिल से अपनी हार्दिक शुभकामनाएं और बधाई प्रेषित करती हूं। और अंत में डॉ अश्वघोष जी की कविता.....

जाना तो निश्चित है... एक दिन ,
अश्वघोष कुछ करके जाना..!!!
सच ही तो कहते थे... दद्दा!
कितना कुछ कर चले गए
एक अनंत यात्रा पर, .!!
सदा सदा के लिए!!!!

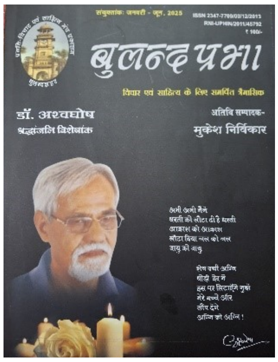

बुलंदप्रभा त्रैमासिक
(जनवरी- जून 2025)
ISSN 2347-7709/03/12/2013
डॉ. अश्वघोष श्रद्धांजलि विशेषांक
सम्पादक- डॉ. अनूप सिंह
अतिथि सम्पादक - मुकेश निर्विकार

-xxx-

विरासत

(सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार दुष्यंत की विरासत को याद करते हुए ....)

(1)

ये ज़ुबाँ हमसे सी नहीं जाती
ज़िन्दगी है कि जी नहीं जाती

इन सफ़ीलों में वो दरारें हैं
जिनमें बस कर नमी नहीं जाती

देखिए उस तरफ़ उजाला है
जिस तरफ़ रौशनी नहीं जाती

शाम कुछ पेड़ गिर गए वरना
बाम तक चाँदनी नहीं जाती

एक आदत-सी बन गई है तू
और आदत कभी नहीं जाती

मयकशो मय ज़रूर है लेकिन
इतनी कड़वी कि पी नहीं जाती

मुझको ईसा बना दिया तुमने
अब शिकायत भी की नहीं जाती

-xxx-

(2)

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए

आज यह दीवार, परदों की तरह हिलने लगी
शर्त थी लेकिन कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए

हर सड़क पर, हर गली में, हर नगर, हर गाँव में
हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए

सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए

मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए

-xxx-

डॉ. देवकीनन्दन शर्मा
प्रधान संपादक

हिन्दी भाषा-क्षेत्र हिन्दी के विरुद्ध साजिश

एक ओर हिन्दीतर राज्यों के विश्वविद्यालयों और विदेशों के लगभग 176 विश्वविद्यालयों एवं संस्थाओं में हजारों की संख्या में शिक्षार्थी हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन और शोध कार्य में समर्पण-भावना तथा पूरी निष्ठा से प्रवृत्त तथा संलग्न हैं वहीं दूसरी ओर हिन्दी भाषा-क्षेत्र में ही अनेक लोग हिन्दी के विरुद्ध साजिश रच रहे हैं। सामान्य व्यक्ति ही नहीं, हिन्दी के तथाकथित विद्वान भी हिन्दी का अर्थ खड़ी बोली मानने की भूल कर रहे हैं। हिन्दी साहित्य को जिंदगी भर पढ़ाने वाले, हिन्दी की रोजी रोटी खाने वाले, हिन्दी की कक्षाओं में हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थियों को विद्यापति, जायसी, तुलसीदास, सूरदास जैसे हिन्दी के महान साहित्यकारों की रचनाओं को पढ़ाने वाले अध्यापक तथा इन पर शोध एवं अनुसंधान करने एवं कराने वाले आलोचक भी न जाने किस लालच में या आँखों पर पट्टी बाँधकर यह घोषणा कर रहे हैं कि हिन्दी का अर्थ तो केवल खड़ी बोली है। भाषा विज्ञान के भाषा-भूगोल एवं बोली विज्ञान (Linguistic Geography and Dialectology) के सिद्धांतों से अनभिज्ञ ये लोग ऐसे वक्तव्य जारी कर रहे हैं, जैसे वे इन विषयों के विशेषज्ञ हों। क्षेत्रीय भावनाओं को उभारकर एवं भड़काकर ये लोग हिन्दी की समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा को नष्ट करने पर आमादा हैं।

कम्प्यूटर की मेधा एवं भाषा विषय पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रयागराज में 03 दिम्बर 2025 को आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में अन्तरराष्ट्रीय भाषाविज्ञानी एवं शुभोदय के सम्मानित संरक्षक प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने विचार प्रस्थान सत्र में अध्यक्षीय सम्बोधन दिया। सत्र के मंचासीन अन्य विद्वानों में प्रोफेसर योगेन्द्र प्रताप सिंह (इलाहाबाद विश्वविद्यालय), प्रोफेसर अमिताभ सत्यम (कम्प्यूटर विशेषज्ञ अमेरिका), प्रोफेसर रामचंद्र जे एन यू) तथा प्रोफेसर सतीश सिंह (कम्प्यूटर विशेषज्ञ प्रयागराज) थे।

-xxx-

'शुभोदय' में रचना प्रस्तुत करने के लिए सामान्य नियम

भाषा एवं लिपि: 'शुभोदय' हिंदी भाषा की ई-पत्रिका है। अतः सभी रचनाएं हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि में उचित व्याकरण और वर्तनी के साथ लिखी जानी अपेक्षित हैं।

प्रकाशन अंक: शुभोदय के वर्ष में दो अंक 'वसंत अंक' और 'शरद अंक' प्रकाशित किए जाते हैं। दोनों अंकों के लिए रचना भेजने के लिए अधिसूचना जारी की जाती है। इस अधिसूचना में निर्धारित अंतिम तिथि तक टंकित रचनाएं शुभोदय की ईमेल: shubhodayashubham@gmail.com पर प्राप्त हो जानी चाहिए।

विषय: रचना किसी भी विवादास्पद विषय पर या किसी समुदाय की भावनाओं को ठेस पहुँचाने वाली या राजनीतिक, धार्मिक, जातीय अथवा क्षेत्रीय विद्वेष पैदा करने वाली नहीं होनी चाहिए।

रचनाओं के प्रकार: शुभोदय के लिए लेख, कहानी, लघु कथा, संस्मरण, कविता, गीत, ग़ज़ल, पुस्तक-समीक्षा और साहित्य जगत की महत्त्वपूर्ण हलचल आदि से सम्बन्धित मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएं भेजी जा सकती हैं।

रचनाओं का आकार: 'शुभोदय' ई-पत्रिका के लिए कविता, गीत, गजल, लघु-कथा के लिए अधिकतम 300 शब्द तथा लेख, कहानी, संस्मरण के लिए 1000 शब्द सीमा निर्धारित है।

मौलिकता: शुभोदय में केवल मौलिक रचनाएं ही स्वीकार की जाती हैं। यदि किसी अन्य रचनाकार की कृति से कोई उद्धरण लिया गया है तो उसका उल्लेख कोष्ठक में या फुट नोट में किया जाना चाहिए।

नैतिक मानक: लेखन में नैतिक मानकों का पालन अनिवार्य है। अभद्र भाषा या असामाजिक सामग्री अस्वीकार्य है।

स्वरूपण: स्पष्ट शीर्षकों, उपशीर्षकों और अनुच्छेदों के साथ लेख को सही ढंग से प्रारूपित किया जाना चाहिए। रचना यूनिकोड़ में टंकित होनी चाहिएं। रचनाओं की वर्ड और पीडीएफ दोनों ही फाइल भेजी जानी चाहिए।

चित्र: यदि लेख में चित्र हैं, तो लेखक को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वे प्रासंगिक हैं, उच्च गुणवत्ता वाले हैं, और उन पर उपयुक्त शीर्षक हैं।

कॉपीराइट: लेखकों को अपने लेखों के कॉपीराइट 'शुभोदय' ई-पत्रिका में स्थानांतरित करने के लिए सहमत होना चाहिए, जो ई-पत्रिका को प्रिंट और डिजिटल सहित किसी भी प्रारूप में लेख प्रकाशित करने की अनुमति देता है।

संपादन: 'शुभोदय' ई-पत्रिका संपादक मंडल लेखक के मूल अर्थ और मंशा को बनाए रखते हुए स्पष्टता, लंबाई और शैली के लिए लेखों को संपादित करने का अधिकार सुरक्षित रखता है।

स्वीकृति: 'शुभोदय' ई-पत्रिका संपादक मंडल को किसी रचना को बिना कारण बताए अस्वीकृत करने का अधिकार होगा।

भुगतान: लेखकों को उनके द्वारा प्रस्तुत रचनाओं के लिए कोई मौद्रिक मानदेय नहीं दिया जा सकेगा।

आवश्यक जानकारी: रचना के साथ रचनाकार का नवीनतम फोटो (जेपीजी या जेपीईजी में), नाम, पता एवं मोबाइल नंबर होना चाहिए।

अस्वीकरण: किसी रचना में व्यक्त विचार और उनकी मौलिकता का पूरा दायित्व रचनाकार का होगा। पत्रिका में प्रकाशित होने पर भी उसकी जबाबदेही रचनाकार की होगी, संपादक मंडल की नहीं। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों को शुभोदय के विचार नहीं माना जाएगा।

चिट्ठी आई है.....

'शुभोदय' के नवीन अंक में उसके सम्पादकों ने गागर में सागर भर दिया है । प्रस्तुत पत्रिका उन सभी पाठकों को प्रेरणा प्रदान करेगी जो अपने जीवन में अपनी प्रतिभा, योग्यता एवं श्रम साधना से कठिन से कठिन परिस्थितियों में अपने लक्ष्यों को साकार करने की कामना रखते हैं। *-प्रो. महावीर सरन जैन, बुलंदशहर-उत्तर प्रदेश*

'शुभोदय' ई-पत्रिका के शरद अंक 2025 के विमोचन पर संपादक मंडल को बहुत-बहुत बधाई एवम् शुभकामनाएँ। हम सभी के लिए यह अत्यंत ही हर्ष एवं गर्व का विषय है की इस पत्रिका का प्रस्तुतिकर्ता संस्थान गुलावठी स्थित है, जो हमारी जन्मभूमि भटौना के बिल्कुल पास है। *-राजेंद्र सिंह, विश्व बैंक-अमेरिका*

संपादक जी, शुभोदय पत्रिका के लिए आप और आपके लिए यह पत्रिका परस्पर एक-दूसरे के सतत साहित्यिक विकास में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। कोई कितना भी प्रतिभासंपन्न हो, जब तक लिखने-पढ़ने का क्रम सतत् जारी नहीं रहता, शब्द रूपी कपाट अपने-आप खुलता नहीं है। आपका भी यह अनुभव रहा होगा, पहले अंक से इस अंक तक में प्रवाह में गति आई है। समय के साथ यह और भी बढ़ेगी। पत्रिका को आप निखार रहे हैं और पत्रिका आपको। यह विकास और प्रवाह जारी रहे। *- संतोष कुमार सिंह, देहरादून-उत्तराखंड*

बहुत ही सुन्दर और साहित्यिक अंक की हार्दिक बधाई। समृद्ध सामयिक लेखों, काव्य रचनाओं, व्यंग्य, कहानी, संस्मरण आदि से सुसज्जित, विविधवर्णी शरद अंक की बधाई। कहीं-कहीं टंकण और दोहों में शिल्पगत त्रुटियाँ द्रष्टव्य हैं। आपका गीत बहुत सुन्दर रहा। पाठ्यक्रम में आने के लिये, हृदयतल से शुभकामनाएँ।

- विनय विक्रम सिंह, गाजियाबाद-उत्तर प्रदेश

यह अंक अपने आकर्षक साज-सज्जा और कलेवर के साथ संग्रहणीय है। सूचना प्रौद्योगिकी के युग में हम विश्व के किसी भी कोने में रहें, एक दूसरे के निकट आ सके हैं। यह सुखद है कि अब हम ई-पत्रिकाओं को मोबाइल पर भी पढ़ सकते हैं। अंतर्जाल पर हम अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों में भी एक दूसरे को देख-सुन सकते हैं और अपनी बातें रख सकते हैं। 'शुभोदय' का शुभ उदय भी इसी कड़ी में एक सुंदर संयोजन है। विद्वान प्रधान संपादक ने पत्रिका की रूपरेखा अपने संपादकीय में ही स्पष्ट कर दिया है। इस सुंदर सारस्वत संयोजन के लिए पूरी टीम साधुवाद की पात्र हैं। इसमें कहानियां, कविताएं, गीत, ग़ज़ल, मुक्त छंद, साक्षात्कार, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य सभी मिलकर इंद्रधनुषी छाप छोड़ते हैं। कहानियां मन को छूने वाली हैं और हास्य-व्यंग्य मन को गुदगुदाने वाला। कहीं गीत-ग़ज़ल मधुमति-भूमिका का सृजन करते हैं तो कहीं मुक्त-छंद और हाइकू जैसी नई विधा आधुनिकता का नववितान तानती प्रतीत होती है। पुस्तक समीक्षा, साहित्यिक हलचल, शुभम्-सम्मान, 'विरासत', श्रद्धांजलि इत्यादि स्तंभ नूतन आयाम गढ़ने में सफल रहे हैं। कुल मिलाकर कह सकते हैं -

"शब्द-शब्द में स्वर्ण-रश्मियां,
'वसुधैव कुटुंबकम्' हो धड़कन
सत्य-पथ के राही बनकर
शुभ-साहित्य का करें सृजन।

-डॉ. शारदा प्रसाद, रामगढ़ कैंट, झारखंड

यह एक बढ़िया पत्रिका है। इस अंक में विद्वजनों की रचनाओं को पढ़ने का अवसर मिला। यह पत्रिका शुभ ही परोसती है और इसके पाठक शुभ विचारों के पक्षधर हैं। पत्रिका की टीम बधाई की पात्र है। पत्रिका दिनोंदिन उन्नति करे इस हेतु विद्यालयों एवं विश्विद्यालयों में इसका प्रसार आवश्यक है। आप इस दिशा में अवश्य कदम उठाएंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। *- डॉ .अंजु दुआ जैमिनी-फरीदाबाद*

-xxx-

शुभोदय के लोकार्पण की चित्रमय झलकियाँ

वसंत 2022

शरद 2022

वसंत 2023

शरद 2023

वसंत 2024

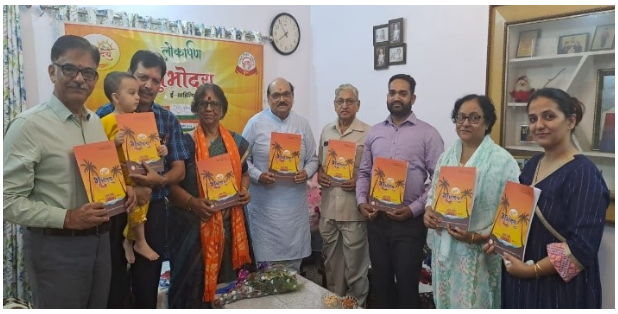

शरद 2024

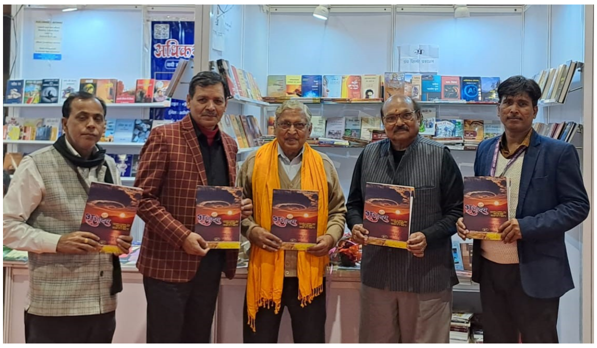

वसंत 2025

शरद 2025

शुभोदय